लालबहादुर शास्त्री

श्रीव्यथितहृदय



रामप्रसाद एण्ड सस · आगरा

प्रकाशक
रामप्रसाद एण्ड सस
अस्पताल रोड
आगरा

तीन रुपया पचास पैसे

मुद्रक
भारत मुद्रणालय
शाहदरा-दिल्ली ३२

दो शब्द

मैं इसे अपना सौभाग्य ही मानता हूँ कि मेरी प्रवृत्ति विश्व के अन्य लोग महान् पुरुषों और नेताओं की जीवन-कथाओं को पढ़ने और उनके संकलन की ओर रही है। अब तक मैं विश्व के पचीसियों नायकों के जीवन चरित्रों और उनकी विशिष्टताओं के पावन-जल से अपनी लेखनी को पवित्र बना सका हूँ। मेरी उसी प्रवृत्ति ने माननीय लालबहादुर शास्त्री जी के चरित्रांकन के लिए भी मुझे प्रेरणा दी है। हो सकता है अपने मन के विकारों के कारण कुछ लोगों को इस काम में भी 'विकार' की गंध मिले पर मुझे तो उनकी विशिष्टताओं के अंकन से पूर्ण संतोष ही है। क्योंकि उनसे देश के उन लाखों-करोड़ों युवकों को प्रेरणा मिलेगी, जो निराशा के अंधकार में भटक रहे हैं।

फिर भी मैं यह कहूँगा कि मेरा यह प्रयास लघु है—बहुत ही लघु है। क्योंकि शास्त्री जी का जीवन उन राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं से ओतप्रोत है, जो पिछले ३०-४० वर्षों से हमारे देश में घटी हैं और बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। मैंने शास्त्री जी से प्रार्थना की है कि वे स्वयं अपने जीवन की कहानी लिखें। पता नहीं शास्त्री जी मेरे निवेदन पर ध्यान देंगे या नहीं अतः उनके घनिष्ठ मित्रों से भी मेरी यही याचना है कि वे शास्त्री जी से अनुरोध करें, कि वे अपना जीवन वृत्त लिखें। उनके जीवन वृत्त के पिछले ३० ४० वर्षों का इतिहास और राष्ट्रनायकों का चरित्र तो व्यक्त होगा ही साथ ही उससे समाज और राष्ट्र को प्रेरणा भी मिलेगी।

मैं अपने इस प्रयास को सफल मानूँगा यदि माननीय शास्त्री जी और उनके मित्र मेरे इस निवेदन पर ध्यान देंगे।

ए २६, कैलाश कालोनी
नई दिल्ली १४
६ अक्तूबर १९६४

ओम्प्रकाशगुप्त

व्यक्तित्व

गौर वर्ण, छोटा कद, चौड़ा मुख-मण्डल, प्रशस्त भाल और मुस्कुराते हुए ओठ। जो भी शास्त्री जी को देखता है उस पर उनके व्यक्तित्व की पूर्ण छाप पड़ जाती है। उनके व्यक्तित्व में, कृत्रिमता नहीं, सरलता है। तड़क-भड़क और शान-शौकत का आकर्षण नहीं, मनुष्य के लिए—सहृदय और विचारशील मनुष्य के लिए एक गहरा खिंचाव है। उनकी शालीनता, और विनम्रता अपनों को ही नहीं, परायों को भी विमुग्ध कर लेती है। वे बोलने में—मिलने में बड़े रस सिक्त हैं। कड़ी से कड़ी बात को भी धैर्य के साथ—हँसते हुए सुनना उन्हें आता है।

विरोधों की झड़ी-अटूक्तियों की बौछार में भी उनकी आकृति पर क्षोभ के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे अपने सभी विरोधियों को भूल जाते हैं पर यह सत्य है कि विरोधियों द्वारा उत्पन्न किए गए आवर्तों में भी वे उबलते हुए नहीं देखे गए।

उस दिन का चित्र आज भी मेरी आँखों के सामने है। रात के नौ-साढ़े नौ बज रहे थे। शास्त्री जी अपने चुनाव क्षेत्र में, कटरा चौरास्ते पर (इलाहाबाद), भाषण दे रहे थे। काफ़ी भीड़ थी। लाल टोपीधारी सौ-डेढ़ सौ युवकों का दल सभा के बाहर खड़ रहकर हंगामा मचा रहा था। उस हंगामे में—उस शोर-गुल में भी शास्त्री जी बड़े धैर्य के साथ कांग्रेस की योजनाओं का चित्र जनता के समक्ष उपस्थित कर रहे थे। उस समय तो शास्त्री जी का धैर्य पराकाष्ठा को पहुँच गया जब सहसा उक्त युवक सभा में प्रविष्ट हो गए और प्रयत्न करने लगे कि सभा भंग हो जाए। कांग्रेस के सहस्रों समर्थक भी आपे से बाहर हो गए। पर शास्त्री जी के चेहरे पर रंचमात्र भी क्रोध न उभरा। वे शैल की भाँति अपने स्थान पर खड़े रहे। शास्त्री जी ने उन युवकों को अपनी शालीनता—अपनी विनम्रता के रज्जु में इस प्रकार बाँधा कि वे लज्जित हो उठे, और अपने हृदय पर दुःख प्रकट करके सभा से चले गए।

शास्त्री जी उन दिनों भारत सरकार के गृह-मन्त्री पद पर आसीन थे। उनके हाथ में पुलिस और शासन की शक्ति थी।

वे चाहते तो पुलिस अधिकारियों को संकेत करके उन युवकों को दण्डित करा सकते थे, पर शास्त्री जी उनकी उद्दण्डताओं को पी गए। सभा की समाप्ति पर, वे एक लाल टोपीधारी युवक की पीठ थपथपाते हुए बोले— 'बड़े जोशीले हो!

और दूसरे दिन मैंने उन विरोधी युवकों को कहते हुए सुना— आश्चर्य है, शास्त्री जी की आकृति पर रंचमात्र भी क्रोध नहीं प्रकट हुआ।'

महान उन्नति के सफल यात्री

कितने ही ऐसे अवसरों पर शास्त्री जी की शालीनता की अखण्डता देखने को मिली है। ऐसे अवसरों पर प्रायः बड़े-बड़े सन्तों और महान् पुरुषों को भी क्रोध के आवेश में तब-तब हुए देखा गया है। तो क्या शास्त्री जी के हृदय में सन्तों की जितेन्द्रियता और महान् पुरुषों की महानता है? अवश्य! शास्त्री जी के इन्हीं गुणों ने तो उनके लिए—उस पद पर पहुँचने के लिए निसेनी का काम किया है जिसे प्राप्त करने के लिए लोग ऐड़ी-चोटी का पसीना एक करते हैं। भारत ऐसे महान् और विशिष्ट देश के प्रधान मन्त्रित्व का पद! वह पद, जिसे विश्व-पुरुष श्री नेहरू सुशोभित कर चुके हैं और जिसकी धाक संसार के बड़े-बड़े देशों के ऊपर भी जम चुकी है उसे—उस महान् पद को शास्त्री जी ने बिना किसी प्रयास के ही प्राप्त कर लिया! कांग्रेस की संसदीय पार्टी ने उनके गुणों—केवल

उनके गुणों पर रीझकर उन्हें अपना नेता निर्वाचित किया। यदि शास्त्री जी में विशिष्टताएँ न होतीं, तो इस प्रपंचमय आडम्बरी राजनीति में कौन ऐसा है, जिसका ध्यान शास्त्री जी की ओर आकर्षित होता ?

क्योंकि शास्त्री जी के पास न तो सम्पत्ति है और न उनका जन्म ही किसी बड़े वंश में हुआ है। वे अपनी विशिष्टताओं को छोड़कर सब प्रकार से साधारण हैं—बहुत ही साधारण हैं। ऐसे ही और भी कई साधारण व्यक्ति अपने असाधारण गुणों से उन्नति के शिखर पर पहुँच सके हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के जीवन पर दृष्टि डालिए। क्या यह सच नहीं है कि लिंकन का सांसारिक जीवन बहुत ही साधारण था और क्या यह भी सच नहीं है कि लिंकन ने अपने असाधारण गुणों से ही उस महान् पद को प्राप्त किया, जिसे प्राप्त करने के लिए लोगों को कई प्रकार का गम्भीर प्रयास करना पड़ता है ? तो क्या शास्त्री जी लिंकन के ही पंथानुयायी हैं ? क्या वे लिंकन की ही राह पर चलकर उन्नति कर सके हैं ? संभव है कुछ लोगों को इसमें अत्युक्ति की गंध मिले पर यह तो सत्य ही है कि शास्त्री जी लिंकन के समान ही, केवल अपनी विशिष्टताओं से भारत ऐसे महान् देश के प्रधान मंत्रित्व के सिंहासन पर आसीन हो चुके हैं।

शास्त्री जी की गौरवपूर्ण उन्नति हमारी आँखों के सामने अलाउद्दीन के कमाल वाला का चित्र भी खींच देती है। जिसे ज्ञात

था कि एक घुड़साल में जन्म लेने वाला बालक कमाल कभी टर्की का अधिनायक होगा? किसे पता था कि गरीब विधवा का पुत्र कमाल, जिसकी मासिक आय केवल आठ रुपए है, कभी सूर्य की किरणों की तरह संसार में अपना प्रकाश बिखेर देगा? इसी प्रकार किसे यह ज्ञात था कि मुगलसराय में एक साधारण कायस्थ वंश में जन्म लेने वाला बालक भारत का प्रधान मंत्री होगा? किसे पता था कि काशी के हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने वाला एक विद्यार्थी, जिसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कठिनाइयों के साथ होती है एक दिन विश्व के महान् राजनीतिज्ञों की पंक्ति में जा बैठेगा? तो क्या शास्त्री जी कमाल पाशा के सदृश महान् हैं? निश्चय शास्त्री जी ने कमाल पाशा की भाँति ही उन्नति के शिखर पर चढ़ने में अपनी विशिष्टता प्रदर्शित की है। संभव है भारत में शास्त्री जी की विशिष्टताओं की ओर अधिकांश लोगों का ध्यान आकर्षित न हो, पर निश्चय है कि यदि शास्त्री जी ने विदेशों में जन्म लेकर इस महान् पद को प्राप्त किया होता तो लिंकन कमाल और कैनेडी की भाँति ही उन्हें आदर और सम्मान मिलता।

नेहरू जी की पैनी दृष्टि

तो फिर कहना ही पड़ेगा कि स्वर्गीय श्री नेहरू जी बड़े दूरदर्शी और पैनी दृष्टि के व्यक्ति थे। आज से पच्चीस-तीस वर्ष पूर्व जब शास्त्री जी नेहरू जी के सम्पर्क में आए थे, तो वे अकेले

ही नहीं थे। उन्हीं के समान कितने प्रयागवासी युवक कांग्रेस कार्यकर्त्ता भी उनके साथ थे। शास्त्री जी और वे सभी लोग कांग्रेस के कार्यक्रमों को पूर्ण करने के लिए प्रायः श्री नेहरू जी के साथ गाँवों में दौरे किया करते थे। जुलूसों में, सभाओं में भी प्रायः उन सबका और श्री नेहरू का साथ रहता था। पर नेहरू जी ने सबको छोड़कर, उनमें से केवल शास्त्री जी को ही अपना प्रमुख स्नेहपात्र बनाया। यद्यपि शास्त्री जी इलाहाबाद में 'प्रवासी' थे—किराये के मकान में रहते थे पर उनमें कांग्रेस के प्रति जो तन्मयता, जो निष्ठा और जो कर्मण्यता थी, उसकी ओर नेहरू जी आकर्षित हुए बिना न रहे। उन्होंने शास्त्री जी के लिए अपने हृदय का द्वार खोल दिया। ज्यों-ज्यों शास्त्री जी की विशिष्टताएँ निखरने लगीं—ज्यों-ज्यों उनकी कार्य-कुशलता सामने आने लगी, वे नेहरू जी के हृदय में अधिकाधिक स्थान पाने लगे और ऐसा क्षण भी आया, जब श्री नेहरू द्वारा विदेश मन्त्रालय का कार्य सौंपे जाने पर बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी अटकलें लगाने लगे कि श्री नेहरू के पश्चात् श्री लालबहादुर शास्त्री ही भारत के प्रधान मंत्री होंगे।

श्री नेहरू के जीवन काल में प्रायः लोग उनसे यह प्रश्न करते थे कि उनके पश्चात् उनका 'उत्तराधिकारी' कौन होगा? श्री नेहरू लोगों के इस प्रश्न को सुनकर बड़े कौशल से टाल जाया करते थे। क्योंकि वे अनन्य प्रजातन्त्रवादी थे

और उनका 'उत्तराधिकार' जैसी वस्तु में विश्वास नहीं था। किन्तु फिर भी उन्होंने शास्त्री जी को विदेश मन्त्रालय का काम सौंपकर उनकी योग्यता और सर्वप्रियता पर मुहर लगा दी। कहा जाता है कि निजी रूप में उनकी अपनी यही इच्छा थी कि यदि उनके पश्चात् शास्त्री जी को ही प्रधान मन्त्री के रूप में वरण किया जाए, तो अधिक अच्छा हो।

नेहरू जी के आकर्षण का कारण

प्रश्न हो सकता है कि शास्त्री जी में ऐसी कौनसी विशिष्टता है जिसने श्री नेहरू जी के मन को बाँध लिया था। हो सकता है इस विषय में मतभेद हो, पर हमारी समझ में उन विशिष्टताओं को इस प्रकार स्मरण किया जा सकता है—परिश्रमशीलता, विशाल राष्ट्रीय दृष्टिकोण और अद्भुत सूझ-बूझ। श्री नेहरू के जीवन-दर्शन का भी यही सार है। श्री नेहरू ने अपने जीवन-दर्शन की तुला पर ही शास्त्री जी को तौला था, और उन्हें सर्व प्रकार से उपयुक्त और अनुकूल पाने पर ही अपना स्नेह ही नहीं, बल्कि अपने पद का कार्यभार भी उनके कंधों पर डाल दिया था। शास्त्री जी श्री नेहरू के सबसे अधिक निकटवर्ती थे, वे जिस बात को किसी पर प्रकट नहीं करते थे, उसे वे बिना झिझक के शास्त्री जी से कह दिया करते थे। वे प्रायः बड़ी-बड़ी समस्याओं पर, पेचीदा मामलों पर, शास्त्री जी की सलाह लिया करते थे। शास्त्री जी

की सलाह उन्हें पहुँचाती थी—पसन्द थी। कांग्रेस पार्टी में ऐसे बहुत से लोग थे, और हैं, जिन्हें श्री नेहरू जी का यह कार्य अच्छा न लगता था पर फिर भी श्री नेहरू शास्त्री जी को अपना हार्दिक स्नेह, और अपनी हार्दिक सहानुभूति देने में न हिचकते थे। श्री नेहरू शास्त्री जी की ओर से पूर्ण आश्वस्त थे। उनकी विशिष्टताओं ने उन्हें भरोसा दिला दिया था कि भारत का भविष्य शास्त्री जी के नेतृत्व में सुरक्षित है।

यह सच है कि शास्त्री जी में विशिष्टताएँ हैं, यह सच है कि उनकी विशिष्टताओं ने ही उनके गौरव-शिखर के लिए निसेनी का काम किया है पर यह भी सच है कि शास्त्री जी इस सम्बन्ध में बड़े सौभाग्यशाली हैं, जो उन्हें श्री नेहरू जी जसे जौहरी के सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। शास्त्री जी के "गुण-दोष" की परख के पश्चात् उन्हें लोगों के समक्ष उपस्थित करने का श्रेय एकमात्र श्री नेहरू जी को ही है। श्री नेहरू ने शास्त्री जी के गुणों को लोक के समक्ष उपस्थित ही नहीं किया वरन् उनकी अनुकूल व्याख्या करके उन्हें और भी अधिक गौरववान बना दिया। यह श्री नेहरू जी का ही काम था कि वे राजनीति के हाट में, जहाँ बड़ी भीड़ भाड़ थी, शास्त्री जी को छाँट पाए, और कितने ही स्थानों से निकालते हुए उस स्थान पर ले गए, जहाँ आज वे हैं। यही तो कारण है कि शास्त्री जी अपने इस कुशल जौहरी के निधन पर अनाथ बालक की भाँति बिलख पड़े थे। प्रयाग में त्रिवेणी का पवित्र

तट ! श्री नेहरू के अस्थि-विसर्जन के पश्चात् दिवंगत आत्मा का शान्ति के लिए शोक सभा का आयोजन हुआ। शास्त्री जी भी बोलने के लिए खड़े हुए। दो चार ही शब्द बोल पाए थे कि उनका कंठ अवरुद्ध हो उठा। जिसने उनकी वह सिसकी सुनी होगी उसे सहज में ही उनकी वेदना का अनुभव हो सकता है। इतना ही नहीं श्री नेहरू के निधन के पश्चात् उनका हृदय दुःखावेग से इतना आक्रान्त हो उठा कि उन्होंने ज्वर से चारपाई पकड़ ली।

श्री नेहरू और शास्त्री का स्नेह सूत्र

शास्त्री जी की नेहरू जी के सम्पर्क में आने की कहानी भी बड़ी स्मरणीय है। कदाचित् १९३० के दिन थे। आंदोलन की आंधी चारों पर थी। इलाहाबाद में भी सभाओं और जुलूसों की धूम थी। रविवार का दिन था। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू और स्वरूपरानी के नेतृत्व में एक बड़ा जुलूस घण्टाघर से सिविल लाइन की ओर चला। पचासों हजार लोग जुलूस में सम्मिलित थे। शास्त्री जी और उनकी माता भी जुलूस में थीं। पर जुलूस सिविल लाइन में प्रविष्ट न हो सका। पुरुषोत्तमदास पार्क के चौराहे पर ही घुड़सवारों की पंक्ति ने जुलूस को रोक दिया। जुलूस के लोग भी वहीं जम-कर बैठ गए। आगे की पंक्ति में स्त्रियां थीं, जिनमें स्वरूपरानी नेहरू, कमला नेहरू और विजयलक्ष्मी पंडित आदि मुख्य थीं।

रह रहकर गगनभेदी नारे लग रहे थे। ऐसे नारे, जो वृक्षों के पत्तों की नसों में भी सिहरन उत्पन्न कर देते थे। सहसा पुलिसमैनों के हाथों में भी सिहरन हुई और वे डण्डे चलाने लगे। कितने ही लोग पुलिस के डण्डों से आहत हुए। आहत होने वालों में श्री नेहरू जी की माता श्री स्वरूपरानी नेहरू, मुख्य थीं।

स्वरूपरानी नेहरू के आहत होने पर शास्त्री जी और उनके कुटुम्बियों ने उनकी सेवा में अपूर्व तन्मयता प्रकट की। श्री नेहरू उनकी तन्मयता और कार्य-सम्पन्नता को देखकर विमुग्ध हो उठे। यद्यपि इसके पूर्व भी शास्त्री जी के सम्पर्क में आ चुके थे पर वही वह दिन था जब शास्त्री जी और नेहरू जी के बीच में पारिवारिक स्नेह ने जन्म लिया। इस घटना के पश्चात् शास्त्री जी आनन्द भवन में आने-जाने लगे। धीरे धीरे वे आनन्द भवन के सदस्यों में एक अंग बन गए। श्री नेहरू भी समय-समय पर, आवश्यकता पड़ने पर श्री शास्त्री जी के घर पर आने से न हिचकते थे। विवाह-शादियों और उत्सवों में, वे अपने महत्वपूर्ण काय-कर्मों को छोड़कर शास्त्री जी के निवास-स्थान पर उपस्थित हुआ करते थे। श्री नेहरू शास्त्री जी की ईमानदारी और सचाई से भली-भाँति परिचित थे। वे जानते थे कि जो शास्त्री जी अपने कुटुम्बियों को अभावों की आग में झुलसते हुए देख सकते हैं पर शासन-सूत्र हाथ में होने पर भी कभी अनुचित कदम नहीं उठा सकते। अतः श्री नेहरू

जी को शास्त्री जी के कुटुम्बियों का सदा ध्यान रहता था, और वे उनके बच्चों के भविष्य की चिन्ता भी किया करते थे। कहा जाता है कि शास्त्री जी के पुत्र श्री हरेकृष्ण को इन्जीनियरिंग की शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड भेजने में श्री नेहरू जी का ही हाथ था। यदि श्री नेहरू का हाथ न होता तो शास्त्री जी के लिए यह बात असम्भव न होती कि वे यह सोचते रह जाते कि मैं अपने मन्त्रिकाल में अपने लड़के को इंग्लैण्ड किस प्रकार भेजूं—लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?

नेहरू के जीवन-दर्शन के अनन्य समर्थक

श्री शास्त्री श्री नेहरू के 'जीवन-दर्शन' के प्रतिरूप हैं। नेहरू जी के सिद्धांतों और आदर्शों का उन्होंने मनन ही नहीं किया है वरन् उनके साँचे में अपने को ढाला है। यदि यहाँ यह भी कहा जाए, तो अत्युक्ति की बात न होगी, कि नेहरू जी की कई विशिष्टताएँ शास्त्री जी में भी हैं, जो उनकी अपनी सम्पत्ति हैं। संयोग से श्री नेहरू और शास्त्री जी के नाम के अक्षरों में भी समानता है—जवाहरलाल और लालबहादुर। बाल्यावस्था में श्री नेहरू और शास्त्री जी का एक ही नाम था—'नन्हें'। दोनों का जन्म यद्यपि एक-दूसरे से दूरवर्ती स्थान में हुआ था, पर प्रयाग में दोनों एक-दूसरे से गंगा और यमुना की भाँति ही स्नेह-सूत्र में आबद्ध हो उठे थे। धार्मिक दृष्टिकोण से भी दोनों में अन्तर था। इस दृष्टि से एक को

श्रीकृष्ण और दूसरे को सुदामा कहना अनुपयुक्त न होगा। जिस प्रकार श्रीकृष्ण और सुदामा का सम्मिलन सांदीपन ऋषि के आश्रम में हुआ था उसी प्रकार भारद्वाज आश्रम की छाया में ही श्री नेहरू और शास्त्री जी के पारस्परिक स्नेह को पल्लवित और पुष्पित होने का अवसर प्राप्त हुआ है। ऐसा लगता है प्रकृति की ओर से ही दोनों पारस्परिक स्नेह, सद्भावना, त्याग, और सौहार्द लेकर धरती पर आये हैं। मैं इस बात को भी प्रकृति की प्रेरणा ही मानता हूँ कि शास्त्री जी नेहरू जी के सम्पर्क में आए और उनकी प्रीति तथा स्नेह के भाजन बने। नहीं तो जब शास्त्री जी प्रयाग में आए तो उनका नेहरू जी की अपेक्षा राजर्षि टण्डन से अधिक सम्पर्क था। शास्त्री जी उस पीपुल्स सोसाइटी के भी सदस्य थे, जिसके संचालन में टण्डन जी का मुख्य हाथ था। राजनीतिक कार्यों में भी उन्हें टण्डन जी से अधिक प्रोत्साहन प्राप्त होता था। कारा-वास की यात्रा करने पर टण्डन जी के द्वारा ही उनके परिवार की देख-रेख भी होती थी। प्रयाग के लोगों को प्रायः यह बात मालूम है कि टण्डन जी का शास्त्री जी पर पितृवत् स्नेह था। पर यह प्रकृति की ही प्रेरणा थी कि शास्त्री जी नेहरू जी के सर्वाधिक सम्पर्क में आ गए। इतने सम्पर्क में आ गए कि राजर्षि के स्नेह का अंचल उनसे छूट गया। यद्यपि शास्त्री जी ने कभी राजर्षि का विरोध न किया, पर यह तो सत्य ही है कि उन्होंने सच्चे हृदय से श्री नेहरू का साथ दिया, उनके

सिद्धान्तों को ग्रहण किया, और उनके प्रचार और प्रसार में एड़ी चोटी का पसीना एक किया। फिर यह कहने में संकोच नहीं हो सकता कि श्री शास्त्री नेहरू जी के जीवन-दर्शन के अनन्य समर्थक हैं।

इसका प्रमाण एक और बात से मिलता है। श्री नेहरू जी के निधन के पश्चात् यों तो सम्पूर्ण भारत ही शोक-सागर में निमग्न हो उठा था पर सबसे अधिक पीड़ा उन अल्पसंख्यकों को हुई थी जो नेहरू जी की 'छत्रछाया' को अपने लिए अमर वरदान मानते थे। नेहरू जी के निधन के पश्चात् वे प्रायः इस बात को लेकर संकल्प विकल्प करने लगे थे कि देखें, अब ऊँट किस करवट बैठता है। इतना ही नहीं, उनके मन में आशंकाएँ भी उत्पन्न होने लगी थीं। पर जब शास्त्री जी का नेता के रूप में निर्वाचन हुआ, तो उनका मन आशा की ज्योति से उद्दीप्त हो उठा। ऐसा लगा, जैसे शास्त्री जी के रूप में उन्हें फिर भी नेहरू मिल गए हों। अल्पसंख्यकों के प्रायः सभी नेताओं और उनके समाचार पत्रों ने शास्त्री जी के चुनाव पर आंतरिक हर्ष प्रकट किया। यदि एक समाचार पत्र की कुछ पंक्तियों को मैं यहाँ उद्धृत करूँ तो अनुचित न होगा—कांग्रेस की संसदीय पार्टी ने श्री नेहरू के उत्तराधिकारी के रूप में श्री शास्त्री का निर्वाचन करके अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचय दिया है। श्री शास्त्री कांग्रेस कर्मियों में सबसे अधिक नेहरू जी के स्नेह-भाजन रहे हैं। इसका एकमात्र कारण है श्री

नेहरू के उसूलों के प्रति उनकी सचाई और निष्ठा। इस बात में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि श्री शास्त्री नेहरू जी के निधन के पश्चात् भी उनके उसूलों में उसी प्रकार निष्ठा रखेंगे जिस प्रकार पहले रखते थे।

आराम हराम

शास्त्री जी बड़े परिश्रमी और अध्यवसायी हैं। नेहरू जी के जीवन-दर्शन का सिद्धान्त, 'आराम हराम है', उनका अपना धन है। वे बाल्यावस्था से ही परिश्रम और अध्यवसाय के मार्ग पर चलते चले आ रहे हैं। उन्होंने बाल्यावस्था में जिस परिश्रम और लगन के साथ विद्या अर्जित की, वह आज के युवकों के लिए—विद्यार्थियों के लिए शिक्षा ग्रहण करने की वस्तु है। न ठाठ-बाट, न आमोद प्रमोद, और न व्यर्थ वाद विवाद। केवल पढ़ने से तात्पर्य, अध्ययन से लगाव। पैदल स्कूल जाते थे, और जब तक स्कूल में रहते थे, केवल पढ़ने लिखने से ही

नेहरू के उसूलों के प्रति उनकी सचाई और निष्ठा। इस बात में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि श्री शास्त्री नेहरू जी के निधन के पश्चात् भी उनके उसूलों में उसी प्रकार निष्ठा रखेंगे जिस प्रकार पहले रखते थे।

आराम हराम

शास्त्री जी बड़े परिश्रमी और अध्यवसायी हैं। नेहरू जी के जीवन-दर्शन का सिद्धान्त, 'आराम हराम है', उनका अपना धन है। वे बाल्यावस्था से ही परिश्रम और अध्यवसाय के मार्ग पर चलते चले आ रहे हैं। उन्होंने बाल्यावस्था में जिस परिश्रम और लगन के साथ विद्या अर्जित की, वह आज के युवकों के लिए—विद्यार्थियों के लिए शिक्षा ग्रहण करने की वस्तु है। न ठाठ-बाट, न आमोद प्रमोद, और न व्यर्थ वाद विवाद! केवल पढ़ने से तात्पर्य अध्ययन से लगाव! पैदल स्कूल जाते थे और जब तक स्कूल में रहते थे, केवल पढ़ने-लिखने से ही

सरोकार रखते थे। घर पर भी व्यर्थ के कार्यों में समय नष्ट नहीं करते थे। प्राय कोई न कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। शास्त्री जी की माता के निम्नांकित शब्दों से उनके बाल और विद्यार्थी जीवन का अध्यवसायी चित्र पर्याप्त रूप में आँखों के सामने चित्रित हो जाता है—
नन्हें अपने मौसा रघुनाथ प्रसाद के घर दारानगर (वाराणसी) में रहते थे। वहाँ रहकर वे पढ़ते थे। यद्यपि उनके मौसा का उन पर अपार स्नेह था पर इस स्नेह के मूल में थी नन्हें की परिश्रमशीलता, पढ़ने-लिखने में उसकी तन्मयता और आचरण की साधुता। 'नन्हें' ने कभी अपने गुरुजनों को शिकायत करने का अवसर नहीं दिया। वे स्कूल में और घर पर भी अपना सारा काम बड़े परिश्रम से पूरा करते थे।'

शास्त्री जी के सहपाठी श्री त्रिभुवननारायणसिंह की निम्नांकित पंक्तियाँ उनकी परिश्रमशीलता और कर्मठता का चित्र उपस्थित करने में बेजोड़ हैं— वह सत्यनिष्ठ ही नहीं बड़े ही कर्मठ अथक काम करने वाले तपोनिष्ठ व्यक्ति भी हैं। सन् १९३६ की बात है वह उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी द्वारा स्थापित उत्तर प्रदेश भूमि सुधार कमेटी के मन्त्री थे और बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन उसके सभापति। उस कमेटी में जिस परिश्रम से उन्होंने रात-दिन काम किया, उसके दर्शन उन लोगों ने किये होंगे, जो उस समय शास्त्री जी के साथ रहे। वह रात दिन उस कमेटी के सम्बन्ध में कुछ-न

कुछ लिखते-पढ़ते रहते थे। रात को ११ १२ तक वह जाते थे, लेकिन उनका काम खतम नहीं होता था। तब मैं और शास्त्री जी उस समय साथ ही रहते थे। मेरी एक छोटी भतीजी ने एक दिन मुझसे पूछा—"चाचा, शास्त्री जी दिन रात इतना काम क्यों करते हैं ? इतने छोटे, कमजोर से आदमी हैं, उन्हें इतना काम नहीं करना चाहिये।"

उसने मुझसे कहा कि मैं उनको मना करूँ कि वह इतना काम न किया करें। लेकिन वह कहाँ किसी की सुनते। बाद में इस विषय पर जब यह रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो उसने सारे देश को एक प्रशस्त मार्ग दिखलाया और धीरे-धीरे सभी प्रदेशों ने उस रिपोर्ट को स्वीकार किया। बाद में जब दोबारा कांग्रेस ने शासन संभाला, तो उसने उसी रिपोर्ट के आदर्श पर पूरी तरह से देश में जमींदारी का उन्मूलन किया। दिन रात लगन से काम करने की शक्ति और कर्मठता को देखकर मेरे मन में कुछ ऐसे विचार आया करते थे कि यह व्यक्ति अपने चरित्र तथा परिश्रम के बल पर ऊँचे-से-ऊँचे स्थान तक जाने के योग्य है और उसके रास्ते में कोई भी रुकावट नहीं आ सकती।

इलाहाबाद नगर और जिले के कांग्रेस कर्मियों में अपने परिश्रम और अध्यवसाय के बल पर ही शास्त्री जी ने अपना प्रमुख स्थान बनाया था। इलाहाबाद के लिए वे नए थे। क्योंकि उनका जन्म स्थान मुगलसराय है। उनकी बाल्यावस्था

के कई वर्ष वाराणसी, रामनगर और मिर्जापुर में व्यतीत हुए थे। उन्होंने वाराणसी में राजनीति में प्रवेश किया। अत इलाहाबाद उनके लिए नया था—इस कथन में अत्युक्ति नहीं। आर्थिक स्थिति भी ऐसी न थी कि वे उसकी शक्ति का अवलम्ब ग्रहण करते। पर धन और सामाजिक प्रतिष्ठा से भी बढ़कर उनके पास एक चीज थी, और वह चीज थी उनकी परिश्रमशीलता—कांग्रेस के उसूलों के प्रति उनकी सच्ची निष्ठा। परिश्रम और अध्यवसाय ही उनका साथी था—उनका मार्ग प्रवर्तक था। वे उसी का आंचल पकड़कर कांग्रेस के पथ पर निष्ठा के साथ चलने लगे। थोड़े ही दिनों में छोटों की तो बात ही क्या बड़े-बड़े नेताओं का भी ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ और छोटे-बड़े सबके बीच में आदर से माने जाने लगे।

जिसने शास्त्री जी की एक कांग्रेस कर्मी के रूप में कर्मठता देखी है और देखी है उनकी परिश्रमशीलता, वह यह कहे बिना न रहेगा कि शास्त्री जी दुबले-पतले और छोटे कद के अवश्य हैं, पर उनकी हड्डियों में दधीचि की अस्थियों का तेज है। गर्मी सर्दी, बरसात—चाहे कुछ भी हो शास्त्री जी गाँवों के लिए निकल पड़ते थे। रेल तांगा इक्का उनकी सवारी थी पर घोर देहाती क्षेत्रों में वह भी नहीं, केवल पदल! धूप शीत और वर्षा के थपेड़ों को अपने सीने पर सहते हुए गाँव गाँव के परिभ्रमण किया करते थे। कदाचित् ही इलाहाबाद

जिले का कोई ऐसा गाँव हो, जहाँ शास्त्री जी न गए हों, और कदाचित् ही ऐसा कोई कस्बा हो, जहाँ शास्त्री जी ने भाषण न दिया हो। जिले के गाँव-गाँव में, कोने-कोने में शास्त्री जी के नाम की गूँज है। प्रात काल घर से निकलते थे, तो फिर आधी रात के पहले घर नहीं लौटते थे। खाने-पीने की सुधि, और न बाल-बच्चों की चिन्ता। कांग्रेस के कार्यों ने—उसके उसूलों ने जैसे उनके मन को पागल कर दिया हो। उनके मन के उसी पागलपन ने—उनकी उसी परिश्रमशीलता ने—उन्हें लोकप्रिय बना दिया। इतना लोकप्रिय बना दिया कि वे जिले की सीमा को लाँघकर प्रान्त में पहुँचे, और अपनी विशिष्टताओं से प्रांत की सीमा को लाँघकर सम्पूर्ण देश के नेता के पद पर आसीन हो गए।

वस्तुत शास्त्री जी की उन्नति ईर्ष्या की वस्तु है—शिक्षा ग्रहण करने की चीज है। आज जो लोग साधनों की विहीनता और अभावों का रोना रोया करते हैं उन्हें शास्त्री जी के जीवन पर दृष्टि डालनी चाहिए। शास्त्री जी भी साधन-विहीन व अभावों से आक्रान्त थे। पर वे एक महावीर की भाँति निरन्तर उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते ही गए। और बढ़ते गए परिश्रम के बल पर, अपने अध्यवसाय की शक्ति से। जो लोग परिश्रम और अध्यवसाय का आँचल ग्रहण करते हैं वे इसी प्रकार उन्नति के शिखर पर पहुँचकर अपनी विजय पताका उड़ाते हैं। केवल बाहर ही नहीं, जेलों में भी शास्त्री

जी का जीवन सदा ही साधनामय और बड़ा ही परिश्रमशील होता था। श्री गिरीशनारायण अवस्थी जी ने शास्त्री जी के परिश्रम और साधनाशील जेल जीवन का चित्र इस प्रकार खींचा है— शास्त्री जी अपने नित्य कार्य और दौड़ से व्यायाम से निवृत्त होकर बराबर अपनी पुस्तकों और लिखने की कापियों में दिन व्यतीत करते थे। फिजूल की गप-शप, लड़ाई-भिड़ाई या 'आ बैल मुझे मार' वाली कहावत चरितार्थ करके आपस वालों और जेल वालों से झगड़ा मोल लेना पसन्द न करते थे। लेकिन साथी यदि किसी प्रश्न पर सर्वसम्मति से लड़ना निश्चय करते थे, तो सही कदम पर स्वाभिमान की रक्षा के वास्ते एक अनुशासित सेनानी की तरह दृढ़तापूर्वक संघर्ष में भी साथ रहते थे। वह मितभाषिता और गंभीर प्रकृति की छाया अपने साथियों पर डालते थे। ज्यादा लेक्चरबाजी का उनको शौक न था। सदा मौन रहकर तन्मयतापूर्वक अपना काम करते रहने की उनकी आदत थी। जब हम लोग उनसे विशेष आग्रह करते तब वह हम लोगों का क्लास लेते थे।'

शासन सूत्र हाथ में आने पर भी शास्त्री जी में परिवर्तन न हुआ। वे जिस प्रकार पहले आराम को हराम समझते थे वही भाव उनका प्रदेश के मंत्रिकाल में था, और वही भाव इस समय भी है जब वे प्रधान मंत्री के पद पर आसीन हैं। उत्तर प्रदेश के पुलिस मंत्री के रूप में शास्त्री जी रात के दस-ग्यारह बजे तक अपने दफ्तर में काम किया करते थे। यही

हाल उनका केन्द्र म रेस, वाणिज्य और गृह मन्त्री के रूप में भी था। इन पदों पर रहते हुए वे प्राय तड़के उठ जाया करते थे और फाइलों मे तन्मय हो जाते थे। साढ़े दस बजे घर से निकलते थे तो दो बजे लौटते थे, और कुछ खा-पीकर फिर जब जाते थे तो छह बजे के पहले लौटकर नहीं आते थे। बंगले पर आते ही उन लोगों से भेंट-मुलाकात प्रारम्भ कर देते थे जो पचासों की संख्या में होते थे और उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहते थे। शास्त्री जी एक-एक व्यक्ति के पास स्वयं जाते थे और बड़े स्नेह के साथ बात-चीत करते थे। किसी से चार मिनट, और किसी से दस मिनट! किसी-किसी से आवश्यकतानुसार आध-आध घंटे का समय भी लग जाता था। यह बातचीत—यह भेंट-मुलाकात केवल खड़े-खड़े और टहलते हुए होती थी। कभी-कभी बारह तक बज जाते थे, पर क्या मजाल कि शास्त्री जी की आकृति पर झुंझलाहट और उकताहट दृष्टिगोचर हो! जब तक व सबसे मिल नहीं लेते थे, बराबर लॉन में टहलते रहते थे।

रात को कदाचित् ही वे कुछ घंटे आराम से सो पाते रहे हों। प्रभात होते ही फिर वही कार्य का चक्र प्रारम्भ हो जाता था। परिवार का सुख बच्चों के साथ आमोद-प्रमोद! वे शायद ही कभी शान्ति और निश्चिन्तता के साथ इस अपूर्व आनन्द का रसास्वादन कर पाते रहे हों! उनकी धर्म-पत्नी

को तो खाने-खिलाने के उद्देश्य से उनका दर्शन भी हो जाता था पर उनके कुटुम्ब के अन्यान्य सदस्यों को उनके पास बैठकर बातचीत करने का अवसर बहुत कम मिलता था। जब देखो तब शास्त्री जी फाइलों में उलझे हुए अपने प्राइवेट सेक्रेटरियों से घिरे हुए। घर के लोग हितैषी सभी शास्त्री जी को समय-समय पर टोकते ही रहते थे कि वे इतना काम न करें, पर शास्त्री जी क्यों मानने लगे? उन्होंने आराम हराम है के जिस सिद्धान्त को बचपन में ग्रहण किया था वह उनके अन्तर के कोने-कोने में प्रविष्ट हो गया था। परिणामत शास्त्री जी का स्वास्थ्य भीतर ही भीतर गिरने लगा। पर फिर भी उन्होंने कभी अपने गिरते हुए स्वास्थ्य की शिकायत किसी से न की।

भीतर ही भीतर शास्त्री जी का स्वास्थ्य गिरता रहा पर फिर भी उनके अध्यवसाय का क्रम न बदला फिर भी उनकी परिश्रम की साधना बन्द न हुई। मुझे वह दिन भली भाँति याद है जब शास्त्री जी इलाहाबाद में अपने मुट्ठी गंज के मकान के कमरे में लोगों से भेंट-मुलाकात कर रहे थे। बाहर सैकड़ों लोग एकत्र थे। उन्हें एक-एक से मिलना था और उसके पश्चात् कार द्वारा मिर्जापुर पहुँचकर एक समारोह में भाग लेना था। स्पष्टत शास्त्री जी की आकृति पर दुर्बलता के चिह्न थे। निश्चय ही वे भीतर ही भीतर पीड़ा का अनुभव कर रहे थे पर वे अब तक मूर्च्छित होकर लड़खड़ा नहीं पड़े,

लोगों को मिलने के लिए घुमाते गए। कदाचित् ही किसी देश का कोई मंत्री जन रुचि और जन हित के लिए इस प्रकार अपने स्वास्थ्य को बाजी लगा सका हो।

सत्यनिष्ठा और ईमानदारी

शास्त्री जी बड़े सत्यनिष्ठ हैं। नेहरू जी के जीवन-दर्शन में सत्य के लिए निष्ठा भी है पर शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा पर गांधी जी का प्रभाव है। शास्त्री जी गांधी जी के समान ही इस सम्बन्ध में बड़े कठोर हैं। उनकी सत्यनिष्ठा और उनकी ईमानदारी के कारण उनके सहस्रों ऐसे मित्र हैं, जो उनसे प्रसन्न नहीं रहते। शास्त्री जी ने अपने शासन काल में सदा स्वजनों की, स्वजातीयों की, और सगे-सम्बन्धियों की उपेक्षा करके अपने सत्य की रक्षा की है। सैकड़ों ऐसे अवसरों को मैं जानता हूँ जब उन्होंने अपनी वृद्ध माता और पत्नी को भी

सत्य के लिए उपेक्षा की है। इतना ही नहीं उन्होंने स्वयं अपनी भी—अपनी कामनाओं की भी उपेक्षा की है। आज सोलह-सत्रह वर्षों तक सरकार में उच्च पदों पर रहते हुए शास्त्री जी के पास अपना कुछ भी नहीं है। न अपना मकान है और न अपनी कोई सम्पत्ति है। मैं शास्त्री जी की पारिवारिक स्थिति से परिचित हूँ। अतः मैं यह कहने का अधिकार भी रखता हूँ कि कदाचित् कांग्रेस के कर्णधारों में शास्त्री जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने शासन के क्षेत्र में उच्च और सर्वोत्तम पदों पर रहते हुए भी अपने लिए कुछ नहीं किया। मेरे कानों में उनकी पत्नी के यह शब्द आज भी गूँजते रहते हैं— 'शास्त्री जी, हम लोगों को वृक्ष के नीचे ही टिकायेंगे।" यद्यपि मैं इस देश का दुर्भाग्य ही कहूँगा। इस देश के लिए यह कितने दुख और कलक की ही बात है कि जो लोग उसकी सेवाग्नि में अपना सर्वस्व होम कर दें, उनके पास उनके बच्चों के रहने के लिए अपना मकान भी न हो। जहाँ तक मुझे मालूम है उसके आधार पर मैं यही कहूँगा, कि इस देश के निवासियों ने कभी उनके साथ न्याय नहीं किया है, जिन्होंने बिना किसी चाह के देश के चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। हो सकता है कि लोगों ने उनकी मूर्तियाँ बनाकर अपने कमरों में रख ली हों, हो सकता है कि वे उनकी झाँकियाँ सजाकर आनन्द की लहरों में मग्न होते हों और यह भी हो सकता है कि वे उन्हें धूप-दीप दिखाकर उनकी प्रार्थना भी करते हों,

दृढ़ ईमानदारी ! इसी निष्ठा और ईमानदारी ने शास्त्री जी को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है—समाज में संपूज्य बनाया है। कांग्रेस में, शासन क्षेत्र में इसी के बल पर वे अपनी धाक जमा सके हैं। उनकी सत्यनिष्ठा की—उनकी ईमानदारी की आज लोगों पर इतनी धाक है कि केवल "शास्त्री जी" कहते ही लोग ईमानदारी का अर्थ लगा लेते हैं। किसी भी कमेटी में किसी भी संगठन में और किसी भी विभाग में केवल शास्त्री जी का नाम सुन करके ही लोग यह कह उठते हैं कि अवश्य ईमानदारी होगी, अवश्य सचाई बरती जायगी। क्योंकि लोगों की यह धारणा है कि शास्त्री जी जब स्वयं अपने लिए भी सत्य का आँचल नहीं छोड़ते फिर उनके संबंध में यह सोचना ही अपने साथ विश्वासघात करना है कि वे कभी किसी के साथ पक्षपात करेंगे—निर्णय करते हुए सत्य का आदर न करेंगे।

और सचमुच शास्त्री जी ने निर्णय में—नियमों के पालन में आज तक कभी किसी का पक्षपात नहीं किया। उन्होंने अपने सगे से सगे सम्बन्धी को भी रुष्ट कर दिया है पर उन्होंने सत्य का पल्ला नहीं छोड़ा है। उन्होंने अपने प्रिय से प्रिय स्वजन की भी चुपचाप पदावनति देख ली है पर उन्होंने ईमानदारी के पथ से पृथक होना पसन्द नहीं किया। कई ऐसे भी अवसर आए हैं, जब उनके अधीनस्थ अफसरों तक ने किसी विशेष व्यक्ति के कार्य के लिए उनसे निवेदन किया है, पर उन्होंने

सत्य के लिए उपेक्षा की है। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वयं अपनी भी—अपनी कामनाओं की भी उपेक्षा की है। आज सोलह-सत्रह वर्षों तक सरकार में उच्च पदों पर रहते हुए शास्त्री जी के पास अपना कुछ भी नहीं है। न अपना मकान है और न अपनी कोई सम्पत्ति है। मैं शास्त्री जी की पारिवारिक स्थिति से परिचित हूँ। अतः मैं यह कहने का अधिकार भी रखता हूँ कि कदाचित् कांग्रेस के कर्णधारों में शास्त्री जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने शासन के क्षेत्र में उच्च और सर्वोत्तम पदों पर रहते हुए भी अपने लिए कुछ नहीं किया। मेरे कानों में उनकी पत्नी के यह शब्द आज भी गूँजते रहते हैं—"शास्त्री जी, हम लोगों को वृक्ष के नीचे ही टिकायेंगे।" यद्यपि मैं इसे देश का दुर्भाग्य ही कहूँगा। इस देश के लिए यह कितने दुख और कलंक की ही बात है कि जो लोग उसकी सेवाग्नि में अपना सर्वस्व होम कर दें उनके पास उनके बच्चों के रहने के लिए अपना मकान भी न हो। जहाँ तक मुझे मालूम है, उसके आधार पर मैं यही कहूँगा, कि इस देश के निवासियों ने कभी उनके साथ न्याय नहीं किया है जिन्होंने बिना किसी मोह के इस के चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। हो सकता है कि लोग ने उनकी मूर्तियाँ बनाकर अपने कमरों में रख ली हों हो सकता है कि वे उनकी झाँकियाँ सजाकर भारत की सड़कों में मग्न होते हों, और यह भी हो सकता है कि वे उन्हें धूप-दीप दिखाकर उनकी प्रार्थना भी करते हों

पर उन्होंने कभी इस बात को सोचने और समझने की चिन्ता नहीं की कि उनके बच्चे किस स्थिति में हैं और वे किस प्रकार जीवन यापन कर रहे हैं। इतना ही नहीं उन्होंने इस बात को भी समझने की आतुरता बहुत कम अवसरों में ही प्रकट की है कि उनके सिद्धान्त क्या थे—उनके विचार क्या थे?

शास्त्री जी की जनतन्त्र में बड़ी आस्था है। उन्होंने अपने शासन काल में कभी अपने अधीन अफसरों के कर्तव्य पालन में बाधा उपस्थित नहीं की। उन्होंने कांग्रेस के सिद्धान्तों और योजनाओं के अनुसार कार्य करने की उन्हें प्रेरणा तो दी, पर प्रशासन के कार्यों में नियमों की पूर्ति में उन्होंने कभी अफसरों को झुकने के लिए बाध्य नहीं किया। उत्तर प्रदेश से लेकर केन्द्र तक वे सदा अफसरों के प्रति विश्वस्त बने रहे। उनकी इस प्रवृत्ति से उनके ही मित्र खिन्न हो गए, कितनों ही के मन में उनके प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई और कितनों ही ने उनकी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी का एक दूसरा अर्थ भी लगाया, पर शास्त्री जी फिर भी अपने पथ से विचलित नहीं हुए। ऐसी बात नहीं कि वे इस बात से परिचित न हों, पर फिर भी वे अपने सत्य का निर्वाह करते जा रहे हैं। कितना अच्छा होता कि अफसर और उनके साथ रहने वाले सरकारी कर्मचारी भी शास्त्री जी के विचारों को समझ सकते और उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते। फिर तो आज जो कुछ हो रहा है वह न होता। न तो कांग्रेस बदनाम होती, और न

सरकार के मस्तक पर ही किसी प्रकार का कलंक लगता। मैं यह नहीं कहता कि शास्त्री जी के समान ही कांग्रेस के सभी नेता सत्यनिष्ठ हैं पर मैं यह कहूँगा कि आज देश की नाव की पतवार जिन हाथों में है, वे अवश्य सत्य के साँचे में ढले हुए हैं।

शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा और उनकी ईमानदारी की चमक! वह ऐसी चमक है जो अग्नि की लपटों में तपाई जाने पर ज्योतित हुई है—निखरी है। उनकी बाल्यावस्था के वे अभावपूर्ण दिन। मैं उनकी सचाई और ईमानदारी के लिए उन दिनों को—उन दिनों की घड़ियों को अग्नि की लपटें ही कहूँगा। शास्त्री जी अपने बचपन के दिनों में जिन स्थितियों से लड़ते-जूझते रहे हैं, कोई विरला ही बालक उनमें अपनी पवता की—अपनी साधुता की रक्षा कर सकता है। वे जिस साहस के साथ—जिस धैर्य के साथ अग्नि की उन भयानक लपटों में रहकर निखर सके हैं, यह उन्हीं के योग्य है। मैं उन दिनों को भी अग्नि की लपटें ही कहूँगा जब शास्त्री जी अपनी लम्बी गृहस्थी का प्रयाग में भगवान के भरोसे छोड़कर जेल की यात्रा किया करते थे। परिवार में स्त्री, माता और छोटी बालिका। न अधिक साधन और न सम्बल। उस स्थिति के अनुमान मात्र से ही हृदय काँप जाता है। पर शास्त्री जी का भी हृदय काँप जाता था, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वे अपने परिवार को इसी रूप में छोड़कर बार-बार जेल की या त्राएँ किया करते थे।

यहां मैं कुछ घटनाओं को उद्धृत करने का लोभ रोक नहीं सकता क्योंकि ये घटनाएं भी आग की उन्हीं लपटों के समान हैं जिनमें शास्त्री जी की सचाई तपाई गई है। प्रकृति की ओर से ज्योतित की गई है—शास्त्री जी जेल में थे, इसी बीच आपकी पुत्री पुष्पा अस्वस्थ हुई और कुछ ही दिन में उसकी हालत चिन्तनीय हो गई। स्थानीय साथियों ने आपसे बाहर आकर उसे देखने के लिए कहा। परोल स्वीकृत हुई—पर शास्त्री जी ने पैरोल पर आना अपने आत्म-सम्मान के खिलाफ समझा क्योंकि तत्कालीन जिलाधीश ने कहा कि शास्त्री जी यह लिखकर दे दें कि बाहर आन्दोलन के समर्थन में कुछ न करेंगे। शास्त्री जी ने दृढ़तापूर्वक सशर्त छूटने से इनकार कर दिया। अन्त में जिलाधीश को शास्त्री जी की नैतिक दृढ़ता और स्वाभिमान के सामने झुकना पड़ा। बिना शर्त पन्द्रह दिन के लिए पैरोल पर शास्त्री जी छूटे। घर पहुंचे—पर उसी दिन बालिका के प्राण-पखेरू उड़ गए। शास्त्री जी उसकी अन्तिम क्रिया करके वापस लौटे—घर के अन्दर भी परिवार से मिलने नहीं गए। सामान उठाकर तांगे में बैठ गये—लोगों ने समझाया कि अभी तो आपको पैरोल बाकी है। शास्त्री जी ने कहा कि जिस कार्य के लिए परोल पर छूटा था वह खतम हो गया है इसलिए अब सिद्धान्ततः मुझे जेल जाना ही चाहिए और शास्त्री जी जेल चले गए।

इसी के एक वर्ष बाद की बात है। शास्त्री जी का पुत्र

बीमार पड़ा। उसे बड़े जोर का टाइफाइड हो गया। उम्र उसकी यही कोई चार वर्ष की थी। शास्त्री जी एक सप्ताह के परोल पर आये। जाने का दिन आया—बच्चे को १०४ डिग्री बुखार था। वह छटपटा रहा था। शास्त्री जी एक घंटे तक उसकी चारपाई के पास खड़े रहे। पिता की आँखों से आँसू बहते रहे, बच्चे का बिस्तर भीगता रहा। बुखार बढ़ता जा रहा था डाक्टर चिन्तित मुद्रा में खड़ा था। जिलाधीश का सन्देश आया कि शास्त्री जी लिखित वायदा करें कि आन्दोलनकारियों से कोई सम्पर्क न रखेंगे, तो परोल की अवधि बढ़ाई जा सकती है। बुखार १०५ तक जा चुका था। शास्त्री जी के चेहरे की ओर सब की दृष्टि थी।

बच्चे ने शास्त्री जी को कसकर पकड़ लिया— बाबूजी, न जाइए।"

उस समय शास्त्री जी के मन पर क्या बीत रही थी—इसे किसी पिता का हृदय ही अनुभव कर सकता है।

पिता की कोमल भावनाओं पर क्रान्तिकारी आदर्श और स्वाभिमान ने विजय पाई। शास्त्री जी ने बच्चे को अपने से अलग किया। अश्रुपूरित आँखों से सबको नमस्कार किया और कमरे के बाहर निकल आये। बच्चा चीखता रहा— 'बाबूजी, बाबूजी!" पर शास्त्री जी ने फिर कर न देखा। और कुछ देर बाद वे जेल की अपनी बैरक में थे।

यह है शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा और सिद्धान्तों के प्रति

दृढ़ ईमानदारी ! इसी निष्ठा और ईमानदारी ने शास्त्री जी को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है—समाज में सपूज्य बनाया है। कांग्रेस में, शासन तन्त्र में इसी के बल पर वे अपनी धाक जमा सके हैं। उनकी सत्यनिष्ठा की—उनकी ईमानदारी की धाक लोगों पर इतनी धाक है कि केवल "शास्त्री जी" कहते ही लोग ईमानदारी का अर्थ लगा लेते हैं। किसी भी कमेटी में, किसी भी संगठन में और किसी भी विभाग में केवल शास्त्री जी का नाम सुन करके ही लोग यह कह उठते हैं कि अवश्य ईमानदारी होगी अवश्य सचाई बरती जायगी। क्योंकि लोगों की यह धारणा है कि शास्त्री जी जब स्वयं अपने लिए भी सत्य का आँचल नहीं छोड़ते फिर उनके संबंध में यह सोचना ही अपने साथ विश्वासघात करना है कि वे कभी किसी के साथ पक्षपात करेंगे—निर्णय करते हुए सत्य का आदर न करेंगे।

और सचमुच शास्त्री जी ने निर्णय में—नियमों के पालन में आज तक कभी किसी का पक्षपात नहीं किया। उन्होंने अपने सगे से सगे सम्बन्धी को भी कष्ट कर दिया है पर उन्होंने सत्य का पल्ला नहीं छोड़ा है। उन्होंने अपने प्रिय से प्रिय स्वजन की भी चुपचाप पदावनति देख ली है पर उन्होंने ईमानदारी के पथ से पृथक होना पसन्द नहीं किया। कई ऐसे भी अवसर आए हैं, जब उनके अधीनस्थ अफसरों तक ने किसी विशेष व्यक्ति के कार्य के लिए उनसे निवेदन किया है, पर उन्होंने

केवल इस लिए उनके निवेदन को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रगट की कि उस व्यक्ति का उनसे विशेष सम्बन्ध है। अभी गत चुनाव की बात है। इलाहाबाद में कुछ लोगों ने इस बात को लेकर कानाफूसी प्रारंभ की कि शास्त्री जी चौधरी नौनिहालसिंह के चुनाव क्षेत्र में कांग्रेस उम्मीदवार का प्रचार करने के लिए इसलिए नहीं आते कि चौधरी साहब शास्त्री जी के घनिष्ठ सम्बन्धी हैं। चौधरी नौनिहालसिंह प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार थे और शास्त्री जी के घनिष्ठ सम्बन्धी हैं। शास्त्री जी के कानों में जब यह खबर पड़ी, तो वे दूसरे ही दिन चौधरी साहब के चुनाव क्षेत्र में गए, और उन्होंने कई सभाओं में भाषण देकर जनता से अपील की कि वह अपना मत कांग्रेस उम्मीदवार को ही दे। कांग्रेस उम्मीदवार का समर्थन करते हुए शास्त्री जी इस बात को भूल गए कि चौधरी साहब के घर में उनकी पुत्री, सुश्री सुमन, का विवाह हुआ है।

सिद्धान्तों के प्रति ऐसी निष्ठा और दृढ़ता कदाचित् ही और कहीं देखने को मिले। आज मगर कांग्रेस की वे घड़ियाँ मुझे कभी नहीं भूलतीं। शास्त्री जी एक साधारण सी कुटिया में ठहरे हुए थे। न सिपाही, और न सन्तरी। केवल प्राइवेट सेक्रेटरी शर्मा उनके साथ थे। मैं बेधड़क उनके सामने जा पहुँचा। मेरे साथ प्रयाग के दो-तीन और कांग्रेस कार्यकर्ता थे। मैंने शास्त्री जी से निवेदन किया कि वे हम लोगों के लिए 'पास'

का प्रबन्ध कर दें। शास्त्री जी ओठों में मुस्कराये, और बोले—"यह लीजिए रुपए और टिकट खरीद लीजिए।" हृदय पर चोट लगी अवश्य पर साथ ही शास्त्री जी के प्रति मन में श्रद्धा भी जाग उठी और मन ही मन सोच उठा कि इस छोटे से कद के व्यक्ति में सिद्धान्तों के प्रति कैसी गहरी निष्ठा और कितनी दृढ़ सचाई तथा आस्था है।

अनुचित बात होगी यदि मैं यहाँ कुछ और ऐसी घटनाओं की चर्चा करूँ, जो शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा और उनकी दृढ़ ईमानदारी के चित्रों को सामने उपस्थित करती हैं। ऐसे चित्रों को उपस्थित करती हैं जो उन लोगों के लिए शिक्षा प्रद भी हो सकते हैं, जो आज जाति-पाँति भाई भतीजे, प्रांतीयता और भाषा के चक्र में फँसकर भारत की उन्नति में बाधक सिद्ध होने के साथ ही साथ सरकार की निन्दा के कारण बन रहे हैं।

यह उन दिनों की बात है, जब शास्त्री जी उत्तर प्रदेश में पुलिस मंत्री थे। एक दिन शास्त्री जी के मौसी के लड़के को, जो कानपुर में रहते थे, एक प्रतियोगी परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए लखनऊ जाने की आवश्यकता पड़ी। वह जब कानपुर स्टेशन के टिकट घर पर पहुँचे तो गाड़ी सीटी दे चुकी थी। परिणामतः वह टिकट खरीद न सके और प्लेटफार्म की ओर दौड़े। इसी समय किसी अपरिचित व्यक्ति ने उनसे कहा कि उसके पास लखनऊ का टिकट है। यदि वे चाहें तो

से सकते हैं। उसने अपनी बात समाप्त करने के साथ ही टिकट उनकी ओर बढ़ा दिया। उन्होंने झट से उसे पैसे दिए, और टिकट जेब में डालकर प्लेटफार्म की ओर भाग खड़े हुए। किसी प्रकार उन्होंने गाड़ी पकड़ी। किन्तु लखनऊ स्टेशन पर जब वे उतरे और उन्होंने फाटक पर टिकट दिया तो फाटक पर स्थित कर्मचारी द्वारा रोक लिए गए। उसने कहा कि यह टिकट आज का नहीं बीते हुए दिन का है। इसलिए अवैध है। उन्होंने कर्मचारी से विनय प्रार्थना करनी प्रारंभ की कि वह उन्हें जाने दे क्योंकि उन्हें परीक्षा में बैठना है। पर वह टस से मस न हुआ। जब उन्होंने इस प्रकार काम बनता हुआ न देखा, तो शास्त्री जी का नाम लिया। उन्हें अपना घनिष्ठ सम्बन्धी बताकर कर्मचारी से सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा की। फिर भी कर्मचारी को विश्वास न हुआ। उसने शास्त्री जी की कोठी पर टेलीफोन किया। संयोगवश शास्त्री जी उस समय कोठी में नहीं थे। शास्त्री जी की धर्मपत्नी ने टेलीफोन पर उक्त कर्मचारी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा— 'हां, यह सच है कि वे हमारे रिश्तेदार हैं।'' किन्तु जब उसने उनसे यह पूछा कि उनके साथ क्या किया जाय, तब उन्होंने उत्तर में कहा कि यह तो शास्त्री जी ही बता सकते हैं।

और उधर शास्त्री जी अपने दफ्तर में काम में व्यस्त। घरवालों को भी पता नहीं कि वे कहाँ गए हैं। वे बेचारे

उक्त कर्मचारी के नियमण में शास्त्री जी के घर पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगे। टेलीफोन पर टेलीफोन! आखिर बारह बजे करीब शास्त्री जी टेलीफोन पर मिले। उन्होंने सारी घटना सुनी। यद्यपि उन्हें दृढ़ विश्वास था कि उनका रिश्तेदार जो कुछ कह रहा है सच है फिर भी उन्होंने जरा भी संकोच न किया। उन्होंने उस कर्मचारी को उत्तर देते हुए कहा कि ऐसे मामलों में दूसरों के साथ जो व्यवहार किया जाता है वही उनके साथ भी होना चाहिए।

पर एक पुलिस सर्वोच्च अधिकारी ने जो कदाचित् आगा साहब है, पूरी घटना सुनने के पश्चात् उन्हें मुक्त कर दिया। वे आज तक यह नहीं भूल सके हैं कि केवल शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा के कारण वे उस दिन परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सके। सुनते हैं वे आज तक शास्त्री जी की कोठी पर कभी नहीं आये। पर यदि वे शास्त्री जी की कर्तव्य-गुरुता पर विचार करते होंगे तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनके मन में इस बात के लिए गर्व ही पैदा होता होगा कि वे एक ऐसे व्यक्ति के निकटवर्ती है, जो जाति-पाँति और स्वजन-सम्बन्धियों के घेरे से ऊपर है—बहुत ऊपर है।

यह एक दूसरी घटना, शास्त्री जी की बहन श्रीमती सुन्दरी देवी एम० एस० ए० ने मुझे सुनाई थी जो उनकी आप बीती है। इस घटना का उल्लेख भी मैं यहाँ इसी उद्देश्य से कर रहा हूँ कि इससे शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा पर प्रकाश पड़ता है—

श्रीमती सुन्दरीदेवी का एक ही लड़का है। उनका नाम है श्री शंकरशरण। उन्हें लोग 'श्री' जी कहते हैं। वे आजकल मुंगेर में जिलाधीश के पद पर नियुक्त हैं। कई वर्ष पहले की बात है, 'श्री' जी आई० ए० एस० की परीक्षा में सम्मिलित हुए थे और उत्तीर्ण हुए। साक्षात्कार में भी उनका चयन हो चुका था। पर उस वर्ष जो सूची तैयार की गई थी, उसमें उनका नाम कुछ लोगों से पीछे आता था। संयोगवश उस वर्ष कुछ थोड़े से ही स्थान रिक्त थे। यद्यपि 'श्री' जी के लिए यह निश्चित था कि वे अपनी योग्यता से ही नियुक्त हो जायेंगे। पर इसमें कुछ देर की संभावना थी। अतः श्रीमती सुन्दरीदेवी ने दिल्ली पहुँचकर शास्त्री जी से कहा कि वे कुछ ऐसी चेष्टा करें, जिससे 'श्री' जी की नियुक्ति चालू वर्ष में ही हो जाए। शास्त्री जी उस समय सुनकर मौन हो गये। बाद में शास्त्री जी ने स्पष्टतः उनसे कहा कि सरकार को यदि अधिक अधिकारियों की आवश्यकता होगी तो उनकी नियुक्ति स्वतः ही हो जायेगी। मैं कुछ भी कर सकने में असमर्थ हूँ।

वे इस बात को लेकर कुछ अप्रसन्न भी हुईं, किन्तु शास्त्री जी ने उनके लिए भी अपने सिद्धान्त का परित्याग नहीं किया। शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा और उनकी ईमानदारी से संबंधित इसी प्रकार की और कई घटनाएँ हैं, जो उनके मित्रों में कही जाती हैं। शास्त्री जी ने अपने घनिष्ठ से घनिष्ठ मित्र को अप्रसन्न होते हुए देख लिया है पर उन्होंने कभी

उक्त कर्मचारी के नियंत्रण में शास्त्री जी के घर पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगे। टेलीफोन पर टेलीफोन! आखिर बारह बजे करीब शास्त्री जी टेलीफोन पर मिले। उन्होंने सारी घटना सुनी। यद्यपि उन्हें दृढ़ विश्वास था कि उनका रिश्तेदार जो कुछ कह रहा है, सच है फिर भी उन्होंने जरा भी संकोच न किया। उन्होंने उस कर्मचारी को उत्तर देते हुए कहा कि ऐसे मामलों में दूसरों के साथ जो व्यवहार किया जाता है वही उनके साथ भी होना चाहिए।

पर एक पुलिस सर्वोच्च अधिकारी ने जो कदाचित् मामा साहब है पूरी घटना सुनने के पश्चात् उन्हें मुक्त कर दिया। वे आज तक यह नहीं भूल सके हैं कि केवल शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा के कारण वे उस दिन परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सके। सुनते हैं, वे आज तक शास्त्री जी की कोठी पर कभी नहीं आये। पर यदि वे शास्त्री जी की कर्तव्य-पुस्ता पर विचार करते होंगे, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनके मन में इस बात के लिए गर्व ही पैदा होता होगा कि वे एक ऐसे व्यक्ति के निकटवर्ती हैं जो जाति-पाँति और स्वजन-सम्बन्धियों के घेरे से ऊपर है—बहुत ऊपर है।

यह एक दूसरी घटना शास्त्री जी की बहन श्रीमती सुन्दरी देवी एम० एस० ए० ने मुझे सुनाई थी, जो उनकी आप बीती है। इस घटना का उल्लेख भी मैं यहाँ इसी उद्देश्य से कर रहा हूँ कि इससे शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा पर प्रकाश पड़ता है—

श्रीमती सुन्दरीदेवी का एक ही लड़का है। उनका नाम है श्री हरनारायण। उन्हें लोग 'श्री जी' कहते हैं। वे आजकल मुंगेर में जिलाधीश के पद पर नियुक्त हैं। कई वर्ष पहले की बात है 'श्री' जी आई० ए० एस० की परीक्षा में सम्मिलित हुए थे और उत्तीर्ण हुए। साक्षात्कार में भी उनका चयन हो चुका था। पर उस वर्ष जो सूची तैयार की गई थी, उसमें उनका नाम कुछ लोगों से पीछे आता था। संयोगवश उस वर्ष कुछ थोड़े से ही स्थान रिक्त थे। यद्यपि 'श्री' जी के लिए यह निश्चित था कि वे अपनी योग्यता से ही नियुक्त हो जायेंगे। पर इसमें कुछ देर की संभावना थी। अतः श्रीमती सुन्दरीदेवी ने दिल्ली पहुँचकर शास्त्री जी से कहा कि वे कुछ ऐसी चेष्टा करें, जिससे 'श्री' जी की नियुक्ति चालू वर्ष में ही हो जाए। शास्त्री जी उस समय सुनकर मौन हो गये। बाद में शास्त्री जी ने स्पष्टतः उनसे कहा कि सरकार को यदि अधिक अधिकारियों की आवश्यकता होगी तो उनकी नियुक्ति स्वतः ही हो जायेगा। मैं कुछ भी कर सकने में असमर्थ हूँ।

वे इस बात को लेकर कुछ अप्रसन्न भी हुईं किन्तु शास्त्री जी ने उनके लिए भी अपने सिद्धान्त का परित्याग नहीं किया। शास्त्री जी की सत्यनिष्ठा और उनकी ईमानदारी से संबंधित इसी प्रकार की और कई घटनाएँ हैं, जो उनके मित्रों में कही जाती हैं। शास्त्री जी ने अपने घनिष्ठ से घनिष्ठ मित्र को अप्रसन्न होते हुए देख लिया है, पर उन्होंने कभी किसी के लिए

भी सत्य का परित्याग नहीं किया। सत्य पालन की यह शिक्षा उन्हें राष्ट्रपिता गांधी के चरित्र से प्राप्त हुई है—यदि यह कहा जाए तो अत्युक्ति की बात न होगी। आज भी जब उनकी बहिन श्रीमती सुन्दरीदेवी इस घटना की चर्चा करती हैं तो स्पष्टतः उनकी आकृति पर इस बात के लिए गर्व झलक पड़ता है कि वे ऐसे भाई की बहिन हैं जो अपनों की उन्नति के लिए सिद्धान्तों का अपहरण नहीं करता।

देश भक्ति

नेहरू जी के जीवन-दर्शन की विशिष्टता—उदार राष्ट्रीय दृष्टिकोण गान्धी जी में भी है। गान्धी जी का जीवन उदात्त राष्ट्रीयता के ही साँचे में ढला हुआ है। वे शरीर से कायस्थ हैं पर उनमें सभी वर्णों की विशेषताएँ मिलती हैं। उनके मन और हृदय के निर्माण में सभी वर्णों की विशिष्टताओं के तत्त्वों का योग है। परिणामस्वरूप उनकी सबमें आसक्ति है, और किसी में नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णों के लोग उनके घनिष्ठ मित्रों में हैं। हिन्दू धर्म के घर में उन्होंने जन्म ग्रहण किया है पर उनकी सभी धर्मों में आस्था

है। वे धर्म की दृष्टि से किसी व्यक्ति का मूल्य नहीं आँकते, वरन् आँकते हैं उसकी मानवता की दृष्टि से। चाहे किसी भी धर्म को मानने वाला व्यक्ति हो पर यदि वह अच्छा है योग्य है, और सदाचारी है तो वे उसका सम्मान करते हैं—उसे बढ़ावा देते हैं। उन्होंने अपने अब तक के जीवन काल में कभी किसी व्यक्ति को इस कारण आदर नहीं दिया कि वह हिन्दू धर्मानुयायी है। यही कारण है कि अल्पसंख्यक वर्ग के लोग उन पर अधिक आस्था रखते हैं। मैं उस दिन को नहीं भूल सकता जब शास्त्री जी का नेता के रूप में चयन हुआ था। उनके बंगले पर उन्हें बधाइयाँ देने वालों की भीड़ एकत्र थी। इनमें एक वृद्ध मियाँ जी भी थे, जो पत्तों की पोटली में माला और पुष्प लिए हुए थे। शास्त्री जी के आने पर वे उनके पास जा पहुँचे और उनके गले में माला डालते हुए बोले— 'खुदा का शुक्र है जो आपका नेता के रूप में चुनाव हुआ। अपनी बात पूरी करते हुए उनकी आँखें छलछला आई थीं।

बूढ़े मियाँ जी की आँखों के वे आँसू! वे आँसू नहीं अल्पसंख्यकों की आस्था और प्रेम की बूँदें थीं। हो सकता है कुछ लोगों को यह प्रिय न हो, पर जो लोग उदात्त राष्ट्रीयता में विश्वास करते हैं जो लोग धर्म और जाति की सीमा से दूर मानवता के आँगन में खेलना पसन्द करते हैं वे शास्त्री जी के इन विचारों का आदर ही करेंगे कि राष्ट्रीयता के क्षेत्र में न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान। न कोई सिक्ख है

और न ईसाई। सभी केवल भारती हैं—केवल भारतीय। श्री नेहरू जी ने भारत की राष्ट्रीयता का चित्र इन्हीं विचारों के आधार पर निर्मित किया है। शास्त्री जी भी इन्हीं विचारों के दृढ़ पोषक हैं। केवल दृढ़ पोषक ही नहीं हैं, उन्होंने इन विचारों के सांचे में अपने जीवन को ढाला है। वे राजनीति के पथ पर अपना एक-एक पग इन्हीं विचारों को आधार मान कर उठाते हैं। वे घर के भीतर और बाहर—एकसमान आचरण करते हैं। जिस प्रकार राजनीति के पथ पर उनकी सब धर्मों में समदर्शिता दिखाई पड़ती है, वही भाव उनका घर के भीतर भी रहता है। उनके घर में प्रतिदिन पूजा-पाठ और कीर्तन चलता ही रहता है। पर मैंने कभी उन्हें कुछ देर तक बैठकर कीर्तन सुनते हुए नहीं देखा। आग्रह किए जाने पर वे केवल मुस्कुरा दिया करते हैं, और केवल एक ही बात में आग्रहकर्ताओं का मुख बन्द कर देते हैं—"आप लोग बड़े पुण्यात्मा हैं मेरे ऐसे भाग्य कहाँ?"

पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि शास्त्री जी को पूजा-पाठ और कीर्तन से विरक्ति है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि शास्त्री जी सभी धर्मों के ग्रन्थों में, केवल उन्हीं कड़ियों को ढूँढ़ते हैं जो मनुष्यों के पारस्परिक बांधव का प्रमाण पत्र है। मेरी समझ में शास्त्री जी की ये कड़ियाँ हैं धर्म। मैं कह नहीं सकता कि शास्त्री जी को कर्म की प्रेरणा कहाँ से मिली। यदि मैं यह कहूँ कि उन्हें कर्म की प्रेरणा गीता से मिली होगी,

तो आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि बाल्यावस्था से ही शास्त्री जी के घर में गीता का पाठ होता है। उनकी माता जी, जिनकी अवस्था इस समय लगभग अस्सी वर्ष की होगी, अपनी इक्कीस-बाईस वर्ष की अवस्था से ही गीता में अनन्य आस्था रखती चली आ रही हैं। पंडित निष्कामेश्वर मिश्र डा० भगवानदास स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव और डा० सम्पूर्णानन्द आदि मनीषी भी जिनके सम्पर्क में रहकर शास्त्री जी ने ज्ञानार्जन किया है आराधना के क्षेत्र में 'कर्म' के ही उपासक थे और हैं। अतः शास्त्री जी भी कर्म को ही प्रमुखता देते हैं। वे भीतर और बाहर—सब ओर से केवल 'कर्म' के ही उपासक हैं। हिन्दू मुसलमान और ईसाई—ये सब में कर्म की ही खोज करते हैं। जो कर्मवान् है वह चाहे कोई हो उनका प्रिय है। बातचीत में भी वे प्रायः 'काम की बात' को ही महत्व देते हैं। उनसे जब कोई व्यर्थ की बातचीत करने लगता है तो वे झट यह कहकर उसका मुख बंद कर दिया करते हैं कि 'केवल काम की बात कीजिए।'

शास्त्री जी की राष्ट्रीयता पर गांधी जी की निर्भयता की छाप है। राष्ट्रीय कड़ियों को सँजोने में शास्त्री जी भी गांधी जी के समान ही अपने कितने ही हितैषियों शुभचिन्तकों और मित्रों को असंतुष्ट करते हुए नहीं हिचकते। पुलिस मंत्री के रूप में उनके सामने कितनी ही बार ऐसी समस्याएँ आईं, जिन्हें हिन्दू-मुस्लिम समस्या के नाम से अभिहित करना अनु-

चित न होगा। पर शास्त्री जी ने उन संपूर्ण समस्याओं के हल और निपटारे में सदा अपनी निर्भीकता का ही परिचय दिया। उन्होंने अपने परिचितों मित्रों और स्नेहियों से पृथक होकर अपना निर्णय दिया। यद्यपि उनके निर्णय से कुछ लोगों ने उन पर मुसलिमपरस्ती का इल्जाम लगाया, और अपने स्वार्थ-साधन के लिए जनता में प्रचार भी किया पर फिर भी शास्त्री जी ने कभी इस बात की चिन्ता नहीं की। वे बड़ी निर्भीकता के साथ आज भी उन्हीं से मिलते-जुलते निर्णयों की पुनरावृत्ति करते जा रहे हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि उन्नत राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण जब श्री नेहरू जी को बदनाम किया जा सकता है और जब गांधी जी ऐसे महामानव को गोलियों का शिकार बनाया जा सकता है तब उन पर भी छींटाकशी की जाए तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

केवल जाति-पाँति और धर्म के ही क्षेत्र में नहीं भाषा और प्रांतीयता के क्षेत्र में भी शास्त्री जी का दृष्टिकोण बड़ा ही ऊँचा और प्रशंसनीय है। शास्त्री जी उस प्रयाग और वाराणसी के निवासी हैं, जिसे लोग हिन्दी और संस्कृत का गढ़ मानते हैं। शास्त्री जी ने स्वयं हिन्दी और संस्कृत का ही विशेष रूप से अध्ययन किया है। हिन्दी के प्रबल समर्थक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ व अपने जीवन के कई वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी बराबर उनका सम्बन्ध रहा है। पर फिर भी उन्होंने हिन्दी

संबंध में कभी ऐसा कोई कदम नहीं उठाया, जिससे अहिन्दी भाषा-भाषियों के मन में उनके प्रति सन्देह जागृत हो, और उन्हें यह कहने का अवसर मिले कि शास्त्री जी पक्षपात कर रहे हैं। हिन्दी शास्त्री जी की अपनी भाषा है और अब तो यह सबकी भाषा है, पर राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से वे हिन्दी की उन्नति सबको साथ में ही लेकर करने के पक्ष में हैं। वे किसी भी अवसर पर किसी भी समारोह में ऐसा कोई कृत्य नहीं करते जिससे भाषा के संबंध में उनकी अपनी हठधर्मी प्रकट हो। कदाचित् यही वह कारण था कि शास्त्री जी ने प्रधान मंत्री पद की शपथ की पूर्ति अंग्रेजी में की। हिन्दी के कई प्रचारकों में इस बात को लेकर शास्त्री जी की आलोचना की गई थी पर इसके साथ ही साथ अहिन्दी भाषा भाषियों और राष्ट्रवादियों की ओर से उन्हें साधुवाद भी मिला था। पर शास्त्री जी को न तो आलोचनाओं ने भयभीत किया और न साधुवाद के शब्दों ने गुमराह किया। वे आज भी हिन्दी की सर्वतोमुखी उन्नति चाहते हैं, पर उसके लिए वे राष्ट्रीयता की उस लड़ी को कदापि भंग न होने देंगे जो घोर साधनाओं और तपश्चर्याओं के पश्चात् निर्मित की गई है।

शास्त्री जी उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। पर कदाचित् यही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके निकटवर्तियों में—कर्मचारियों में—उत्तर प्रदेश के निवासियों का अनुपात बहुत ही स्वल्प है। वास्तव में बात यह है कि शास्त्री जी जब जिस विभाग में

रहे हैं उन्होंने प्रांतीयता के क्षेत्र से ऊपर उठकर काम किया है। कर्मचारियों और अफसरों की नियुक्ति और पसन्द में उन्होंने सदा योग्यता और कार्यक्षमता को ही सर्वोपरि माना है। रेल मन्त्री से लेकर प्रधान मन्त्री के पद तक यदि उनके निकटवर्ती और प्रधान कर्मचारियों पर दृष्टि डाली जाए, तो शास्त्री जी प्रान्तीयता के इस महा रोग से मुक्त दिखाई देंगे। यद्यपि इस रोग-मुक्ति ने शास्त्री जी को उत्तर प्रदेश की राजनीति म पीछे खिसकने के लिए बाध्य किया है, पर शास्त्री जी राजनीतिक पदों और अधिकारों से राष्ट्र को अधिक महत्त्व देते हैं। वे राष्ट्र की वेदिका पर अपनी बलि चढ़ा सकते हैं पर अपने स्वार्थों के लिए राष्ट्रीयता की बलि उन्हें पसन्द नहीं—स्वीकार नहीं।

शास्त्री जी ने अपने विचारों के द्वारा अपने उन्नत राष्ट्रीय दृष्टिकोण का चित्र भी उपस्थित किया है। निम्नांकित पंक्तियों में उन्होंने राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता, प्रांतीयता और भाषा का जो चित्र खींचा है वह उन्हीं के योग्य है—
'हमें अपनी राष्ट्रीयता की जड़ों को और अधिक मजबूत करना है। हमारी राष्ट्रीय भावना की एक कमजोरी का लाभ अंग्रेजों ने उठाया। भारत के एक वर्ग को उन्होंने फुसलाया। कांग्रेस ने कभी भी दो राष्ट्र के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया फिर भी हम परिस्थितियों से मजबूर थे। और कुछ लोगों ने एक अलग राष्ट्र पाकिस्तान की माँग की।

पाकिस्तान ने अपने को एक इस्लामी राष्ट्र घोषित किया, पर हम अब भी एक राष्ट्र सिद्धान्त को ही मानते हैं क्योंकि इसी में मानव-समाज का कल्याण है।

पाकिस्तान के प्रति हमारी कोई वैमनस्यपूर्ण भावना नहीं है। पाकिस्तान ने अपने को इस्लामी राष्ट्र घोषित करके वहाँ के अल्पसंख्यकों को खूब सताया फिर भी हमने अपना संयम नहीं छोड़ा। उधर पाकिस्तान से अल्पसंख्यकों को जबरदस्ती बाहर निकाला जा रहा था, इधर हम भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की पूर्ण रक्षा कर रहे थे। यह है भारत की परम्परागत उदारभावना।

पाकिस्तान में हिन्दुओं को दबा दिया गया। भारत में फिलहाल तो साम्प्रदायिकता नहीं है। पर क्या वह पूर्णतः समाप्त हो चुकी है या नहीं यह भावना तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक हम इस प्रवृत्ति को रचनात्मक कार्यों में नहीं लगा पाते।

धर्म के प्रभाव कभी-कभी बड़े विचित्र होते हैं। अभी भी बहुत से लोग यह कहते पाये जाते हैं कि हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख अलग समुदाय हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे समाज में अनेक त्रुटियाँ हैं और उनका कारण धर्म की भावना है। एक ही गली में रहने वाले हिन्दू, मुसलमान और ईसाई आपस में मिलते-जुलते हैं, उनके परस्पर सम्बन्ध भी हैं पर उनके जीवन का ढंग परस्पर भिन्न है। अब हम

तक यह भिन्नता बनी रहेगी तब तक हमारी राष्ट्रीयता मर्दित रहेगी।

' साम्प्रदायिकता के रोग का निदान करने के लिए हमें पुराने इतिहास को दृष्टिगत करना होगा। यदि हम उसको ध्यान में रखकर आगे प्रयत्न करेंगे, तो सम्भवतः हम वह गलती नहीं करेंगे जो पहले हो चुकी है। भिन्नता का प्रदर्शन तथा शुद्ध राष्ट्रीय भावना—दोनों पृथक हैं। राष्ट्रीयता का अर्थ है देश के प्रति लगाव और निष्ठा। व्यक्तिगत धार्मिक तथा साम्प्रदायिक दायरे से बाहर निकलकर अपने अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के प्रति एक स्वाभिमान की भावना ही राष्ट्रीयता है। इसके लिए साधारण इक्के-दुक्के प्रयत्नों या दबाव से इस दिशा में कोई लाभ न होगा। इस रोग का निदान तो समझकर तथा धैर्य के साथ करना होगा।

' किसी राष्ट्रीयता की आवश्यक शर्तें ये हैं—एक भौगोलिक घन प्रदेश, एक सम्मिलित इतिहास, सम्मिलित सामाजिक प्रथाएं एवं जीवन यापन का ढंग और एक सम्मिलित भाषा। ये सभी शर्तें भारत में मौजूद हैं। इन सभी शर्तों का एक समग्र रूप ही संस्कृति कहा जा सकता है। और जब तक यह संस्कृति सुरक्षित रहती है तब तक जनता की मूल एकता कदापि भंग नहीं हो सकती।

हमारी संस्कृति भारत के विचारों उसकी भावनाओं तथा उसकी सचेतन आकांक्षाओं की प्रतीक है।

पाकिस्तान ने अपने को एक इस्लामी राष्ट्र घोषित किया, पर हम अब भी एक राष्ट्र सिद्धान्त को ही मानते हैं क्योंकि इसी में मानव-समाज का कल्याण है।

'पाकिस्तान के प्रति हमारी कोई वमनस्यपूर्ण भावना नहीं है। पाकिस्तान ने अपने को इस्लामी राष्ट्र घोषित करके वहाँ के अल्पसंख्यकों को खूब सताया, फिर भी हमने अपना संयम नहीं छोड़ा। उधर पाकिस्तान से अल्पसंख्यकों को जबर्दस्ती बाहर निकाला जा रहा था इधर हम भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की पूर्ण रक्षा कर रहे थे। यह है भारत की परम्परागत उदारभावना।

पाकिस्तान में हिन्दुओं को दबा दिया गया। भारत में फिलहाल तो साम्प्रदायिकता नहीं है। पर क्या वह पूर्णतः समाप्त हो चुकी है या नहीं, यह भावना तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक हम इस प्रवृत्ति को रचनात्मक कार्यों में नहीं लगा पाते।

"धर्म के प्रभाव कभी-कभी बड़े विचित्र होते हैं। अभी भी बहुत से लोग यह कहते पाये जाते हैं कि हिन्दू मुसलमान और सिक्ख अलग समुदाय हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे समाज में अनेक त्रुटियाँ हैं और उनका कारण धर्म की भावना है। एक ही गली में रहने वाले हिन्दू मुसलमान और ईसाई आपस में मिलते-जुलते हैं उनके परस्पर सम्बन्ध भी हैं, पर उनके जीवन का ढंग परस्पर भिन्न है। अतः अब

'संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति के प्रसार का माध्यम, ज्ञान का कोष तथा भारत की जन भाषा रही है। संस्कृत का ह्रास होने से राष्ट्रीयता का एक शक्तिशाली माध्यम नष्ट हो गया। अंग्रेजी भाषा ने हमें पुनः सांस्कृतिक एकता व राष्ट्रीयता का बोध कराया पर साथ ही उसने समाज को शासक और शासित तथा अंग्रेजीदाँ और ग़ैर अंग्रेजीदाँ—दो भागों में बाँट दिया। पर जब हमारा लक्ष्य वर्गहीन समाज बनाना है तो हम इस भेद भाव को कैसे रहने दे सकते हैं? लोकतन्त्र में ऐसी कोई भी वस्तु जीवित नहीं रह सकती जो जन-जन की अपनी न हो।"

बौद्धिक कुशलता

शास्त्री जी में अपूर्व बुद्धि कौशल है। वे किसी बिगड़ती हुई चीज को बचाना और किसी जटिल समस्या को सुलझाना खूब जानते हैं। वे विवादों के अन्धकार में भी सत्य का ढूंढ लेते हैं—निदान की थाह लगा लेते हैं। कांग्रेस के दल में बिगड़ती हुई समस्याओं को सुलझाने के लिए वे अधिक प्रसिद्ध हैं। जब भी किसी प्रान्त में कोई विग्रह खड़ा हुआ है—किसी बात को लेकर झगड़ा उत्पन्न हुआ है, तब कांग्रेस ने शास्त्री जी को आगे खड़ा किया है। तो क्या नेहरूजी में बुद्धि-कौशल नहीं था? उनमें दूरदर्शिता का अभाव था?

नेहरू जी में अपार बुद्धि-कौशल था और अपार दूरदर्शिता भी, पर नेहरू जी विवादग्रस्त मामलों में प्राय शास्त्री जी को ही आगे किया करते थे। शास्त्री जी की मृदुता उनके धर्म और उनकी विचारशीलता का उन्हें खूब भरोसा था। वे कई अवसरों पर उनके इन गुणों को अपनी कसौटी पर कस चुके थे, और उन्हें 'खरा' पा चुके थे। शास्त्री जी में यह बात मुख्य रूप से है कि विवादग्रस्त स्थलों पर विष की कड़वी घूँटें भी पीकर उन्हें पचा जाते हैं।

सन् १९५१ के चुनाव के दिन! कांग्रेस के भीतर चुनाव को लेकर एक महान् संघर्ष-सा उठ खड़ा हुआ था। कुछ-एक प्रांत में नहीं बल्कि प्राय सभी प्रांतों में चुनाव के प्रश्न को लेकर एक अजीब वितंडावाद-सा पैदा हो उठा था। बड़े-बड़े नेता तो टिकट के उम्मीदवार थे ही छोटे-छोटे कार्य कर्ताओं के मुख में भी पानी भर आया था। कितने ही बाहर के लोग भी थे, जो कांग्रेस के टिकट के लिए एड़ी चोटी का पसीना एक कर रहे थे। एक-एक स्थान के लिए दस-दस उम्मीदवार! जिसे देखो वही आँखें तरेर रहा था। श्री नेहरू के सामने एक महान् भँवर-जाल-सा उत्पन्न हो गया कि वे किस प्रकार लोगों की अभिलाषाओं की तरंगों को एकता के सुदृढ़ कूलों में बाँध सकें। वे कांग्रेस के भीतर एक ऐसे महान् व्यक्तित्व की खोज करने लगे जो अपने व्यवहार से, अपनी बुद्धि की कुशलता से सबको सन्तुष्ट कर सके।

आखिर उनकी दृष्टि शास्त्री जी पर पड़ी। उन्होंने शास्त्री जी के कधों पर इसका भार छोड़ दिया। शास्त्री जी ने उनकी आज्ञानुसार ही शासन के कार्यों से पृथक होकर निर्वाचन के दायित्व को अपने ऊपर लिया। और फिर जिस कौशल के साथ उन्होंने अपने दायित्व का निर्वाह किया उसकी समर्थकों ने ही नहीं, विरोधियों ने भी भूरि भूरि प्रशंसा की। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे चुनाव में भी शास्त्री जी ने अपने बुद्धि-कौशल से कांग्रेस-संगठन की नाड़ी को, पारस्परिक विरोधों से कमजोर होने से बचाया ही नहीं, उसे सुदृढ़ भी बनाया।

असम में भाषा-विवाद के वे दिन! ऐसा लगता था कि असम में भाषा विवाद को लेकर एक भयानक विस्फोट होगा और उससे भारत की राष्ट्रीयता की धरती हिल उठेगी। नेहरू जी को फिर शास्त्री जी की याद आई और उन्होंने उन्हें असम भेजा। शास्त्री जी ने असम जाकर दोनों पक्षों की बातें सुनने और सतुलित निर्णय देने में जिस धैर्य और कौशल को उपस्थित किया था, उसकी सभी समाचार-पत्रों और नेताओं ने भूरि भूरि प्रशंसा की थी। यह शास्त्री जी की ही अपूर्व सूझ-बूझ और बुद्धि का कौशल था कि असम की भाषा समस्या ने उग्र रूप धारण नहीं किया, और उसके मस्तक पर जो कलंक लगने जा रहा था, वह लगने से बच गया। आज असम और बंगाल के बड़े-बड़े नेता तक शास्त्री जी के इस उपकार को मानते हैं और उनके बुद्धि चातुर्य की सराहना करते के

साथ ही साथ उनके प्रति कृतज्ञता भी प्रगट करते हैं।

वे दिन भी नहीं भूलते जब नेपाल और भारत के पार स्परिक सम्बन्ध बिगड़ने लगे थे। कारण चाहे जो भी रहा हो, पर ऐसा प्रतीत होने लगा था कि भारत और नेपाल के बीच एक गहरी खाई पैदा हो जायगी। ऐसी खाई, जो दोनों देशों की उन्नति और प्रगति के लिए विघातक सिद्ध होगी। श्री नेहरू फिर इस समस्या को लेकर चिन्तित हुए और उन्होंने फिर शास्त्री जी को इस कार्य के लिए आगे किया। शास्त्री जी ने नेपाल की सद्भावना यात्रा की। शास्त्री जी ने नेपाल के उच्च अधिकारियों से बातें कीं और उन कारणों को जानने की चेष्टा की, जो भारत और नेपाल की पारस्परिक मित्रता में अवरोध पैदा कर रहे थे। शास्त्री जी ने उन कारणों का मथन करके एक ऐसा हल ढूंढा जिससे दोनों देशों का पार स्परिक विरोध दूर हो गया और दोनों देश फिर स्नेह-सूत्र में आबद्ध हो गए। इसी प्रकार जब कश्मीर में हजरत मुहम्मद साहब के बाल को लेकर विग्रह की आंधी उठी, तो उसे शान्त करने के लिए शास्त्री जी को ही कश्मीर भेजा गया। शास्त्री जी ने कश्मीर में जाकर जिस कौशल से चोरी गए बाल का पता लगाने में सहायता दी और उठी हुई विग्रह की आंधी को शान्त किया, उसकी देश के ही नहीं विदेश के पत्रों ने भी मुक्त कंठ से सराहना की थी।

इसी प्रकार कांग्रेस के अन्तर्गत कितनी ही बार दलीय झगड़ों

और विवादों को शांत करने में शास्त्री जी ने अपनी बुद्धि का चातुर्य प्रदर्शित किया है। शास्त्री जी की सत्य अन्वेषिणी बुद्धि उनकी अपनी सम्पत्ति है। इस बुद्धि का उनसे बचपन से ही लगाव है। यहाँ हमें उनकी बाल्यावस्था की एक घटना याद आ जाती है जिसे सामने रखने पर फिर इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि शास्त्री जी बाल्यावस्था से ही अपने बुद्धि-चातुर्य द्वारा सही बात का पता लगाने में बड़े सिद्धहस्त हैं।

यह उन दिनों की बात है, जब शास्त्री जी की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी। शास्त्री जी अपने मामा स्वर्गीय विश्वेश्वरी बाबू के साथ मिर्जापुर जाने के लिए मुगलसराय स्टेशन पर गाड़ी पर सवार हुए। विश्वेश्वरी बाबू के पास सोने के आभूषणों की एक पोटली थी जिसे वे बगल में दबाए हुए थे। मिर्जापुर स्टेशन पर उतरने पर वे गहनों की पोटली रेल के डिब्बे में ही भूल गए। घर पहुँचने पर उन्हें इस बात का स्मरण हुआ कि पोटली तो डिब्बे में ही रह गई। पर अब क्या हो सकता था? क्योंकि अब तक तो गाड़ी कई स्टेशनों को आगे पार कर गई थी। बेचारे चिन्तित होकर पलंग पर पड़ गए। शास्त्री जी अब तक विचारों में ही डूबे हुए थे। सोचते-सोचते वे विश्वेश्वरी बाबू के पास आकर बोले—"मामा, क्यों न एक बार स्टेशन पर चलकर 'वेटिंग रूम' आदि न देख लिया जाए? हो सकता है कि जिस आदमी को पोटली मिली हो, वह मिर्जापुर स्टेशन पर ही उतर गया हो, और वेटिंग रूम में मौजूद हो।"

विशेश्वरी बाबू को शास्त्री जी की बात जँच गई। वे शास्त्री जी को साथ लेकर फिर स्टेशन पर गए। विशेश्वरी बाबू तो इधर-उधर देखने लगे पर शास्त्री जी सीधे चुपचाप वेटिंग रूम में जा पहुँचे। अरे, यह क्या ? यह तो सचमुच एक आदमी पोटली खोलकर बैठा है और एक-एक गहने को बड़े ध्यान से देख रहा है। शास्त्री जी ने झपटकर उस आदमी का हाथ पकड़ लिया और कहा—"यह गहने तो हमारे मामा के हैं।' विशेश्वरी बाबू भी शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। उन्हें जो हर्ष हुआ उसका अनुमान उसी को हो सकता है जिसके सोने के आभूषण चोरी जाने पर पुनः प्राप्त हुए हों। विशेश्वरी बाबू जब तक जीवित रहे, बराबर शास्त्री जी के बुद्धि चातुर्य की प्रशंसा किया करते थे।

पर यदि आज वे होते तो देखते कि उनके लालबहादुर के बुद्धि चातुर्य की प्रशंसा सारा देश कर रहा है।

त्याग

शास्त्री जी अनन्य देशभक्त और त्यागी हैं। देश की वेदिका पर उन्होंने जिस प्रकार अपने सुखों, आकांक्षाओं और आशाओं की बलि चढ़ाई, वह उदाहरण की वस्तु है। देशों की स्वाधीनता के इतिहास में उन नर-पुंगवों के त्याग की बड़ी प्रशंसा की गई है, जो ऐश्वर्य के अंक में पले थे किन्तु जब मातृभूमि की ओर से पुकार हुई, तो उन्होंने सब कुछ त्यागकर उसके लिए कमर में मूंज की मेखला पहन ली। पर झोंपड़ों के उन दीपकों के त्याग की ओर बहुत ही कम लोगों का ध्यान आकर्षित हो सका है, जो देश की लौ में केवल जलते रहे हैं—अन-

जल कर काले होते रहे हैं ! शास्त्री जी ऐसे ही एक दीपक हैं !

वाराणसी में प्रथम बार जब वे जेल गए थे तो क्या यह सच नहीं है कि उन्होंने अपनी उस माँ की ममता और स्नेह का भी ख्याल नहीं किया था जो पति की मृत्यु के पश्चात् बड़ी आशा से शास्त्री जी की ओर देख रही थी ! एक नहीं शास्त्री जी ने ग्यारह-ग्यारह बार जेल की यात्राएँ कीं और वह भी अपनी पत्नी और माँ को अभाव की गोद में छोड़कर अपने छोटे-छोटे बच्चों का निराश्रित त्याग कर !! रुपए-पैसे और घर-द्वार का त्याग तो सरलता के साथ किया जा सकता है पर कोई भी पिता अपने उस बच्चे का छोड़कर कारागार की यात्रा नहीं कर सकता जो ज्वराक्रांत हो और चारपाई पर तड़प रहा हो ! महाराज दशरथ श्रीराम के वन गमन पर ही शोक विह्वल हो उठे थे, और इतना शोक विह्वल हो उठे थे कि उनके प्राणों के तंतु टूट गए। फिर उस देशभक्त जेल यात्री की किन शब्दों में प्रशंसा की जाए, जो अपने बीमार पुत्र को चारपाई पर छोड़कर जेल की यात्रा कर रहा हो !

इन पंक्तियों के लेखक को उन दिनों भी कई बार शास्त्री जी के घर में जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनकी माँ, पत्नी और बच्चों से मिलने-जुलने का संयोग उपस्थित हुआ है। जो कुछ इन आँखों ने देखा है कानों ने सुना है—उनके आधार पर मैं केवल इतना ही कहूँगा कि शास्त्री जी वीर हैं, महान् त्यागी हैं, और अनन्य देशभक्त हैं ! हो सकता है कि कुछ लोग

यह कहूँ कि मैं अतिशयोक्ति और भावुकता का आँचल ग्रहण कर रहा हूँ, पर फिर भी मेरे भीतर का विवस्व यह कहने के लिए बाध्य कर रहा है कि शास्त्री जी उस योगी की भाँति हैं, जो अपनी मंजिल पर पहुँचने के लिए अपने सर्वस्व तक की बाजी लगा देता है। शास्त्री जी का वह त्याग ही आज उनके जीवन में वरदान की भाँति पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। उनकी महत्त्वपूर्ण उन्नति ही उनके त्याग का ज्वलन्त चित्र है। यदि शास्त्री जी ने त्याग का आँचल ग्रहण न किया होता तो भारत ऐसे देश में उनके लिए कभी यह सम्भव नहीं था कि वे अभाव पूर्ण स्थिति में जन्म लेने और रहने पर उस पद पर पहुँचते जहाँ आज वे हैं।

शास्त्री जी राष्ट्रपिता गांधी जी के परम भक्त हैं। गांधी जी के सत्य अहिंसा और सादगी के साँचे में उन्होंने पूर्ण रूप से अपने जीवन को ढाला है। वे १९२० और १९२१ ई० से ही खादी पहन रहे हैं। केवल वे ही नहीं, उनकी पत्नी और माँ आदि घर के कुटुम्बी भी खादी के ही वस्त्र धारण करते हैं। शास्त्री जी चर्खा भी चलाते हैं। वे बचपन से ही शाकाहारी हैं। उनके सभी कुटुम्बी गांधी जी के 'अनन्य' के पथानुयायी हैं। गांधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन आरम्भ किए जाने पर शास्त्री जी ने सोलह वर्ष की अवस्था में पढ़ना-लिखना छोड़कर उस आन्दोलन में भाग लिया। यद्यपि उस समय शास्त्री जी की अवस्था अठारह-उन्नीस वर्ष की थी, परन्तु फिर भी वे जेल गए। जेल

जल कर काले होते रहे हैं! शास्त्री जी ऐसे ही एक दीपक हैं!

वाराणसी में प्रथम बार जब वे जेल गए थे तो क्या यह सच नहीं है कि उन्होंने अपनी उस माँ की ममता और स्नेह का भी ख्याल नहीं किया था, जो पति की मृत्यु के पश्चात् बड़ी आशा से शास्त्री जी की ओर देख रही थी! एक नहीं, शास्त्री जी ने ग्यारह-ग्यारह बार जेल की यात्राएँ कीं, और वह भी अपनी पत्नी और माँ को अभाव की गोद में छोड़कर अपने छोटे-छोटे बच्चों को निराश्रित त्याग कर!! रुपए-पैसे और घर-द्वार का त्याग तो सरलता के साथ किया जा सकता है पर कोई माँ पिता अपने उस बच्चे को छोड़कर कारागार की यात्रा नहीं कर सकता जो ज्वराक्रांत हो और चारपाई पर तड़प रहा हो! महाराज दशरथ श्रीराम के वन गमन पर ही शोक विह्वल हो उठे थे, और इतना शोक विह्वल हो उठे थे कि उनके प्राणों के तन्तु टूट गए। फिर उस देशभक्त जेल यात्री की किन शब्दों में प्रशंसा की जाए जो अपने बीमार पुत्र को चारपाई पर छोड़कर जेल की यात्रा कर रहा हो!

इन पंक्तियों के लेखक को उन दिनों भी कई बार शास्त्री जी के घर में जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनकी माँ, पत्नी और बच्चों से मिलने-जुलने का संयोग उपस्थित हुआ है। जो कुछ इन आँखों ने देखा है, कानों ने सुना है—उनके आधार पर मैं केवल इतना ही कहूँगा कि शास्त्री जी वीर हैं, महान् त्यागी हैं, और अनन्य देशभक्त हैं! हो सकता है कि कुछ लोग

यह कहूँ कि मैं अतिशयोक्ति और आसक्ति का आंचल ग्रहण कर रहा हूँ, पर फिर भी मेरे भीतर का विश्वास यह कहने के लिए बाध्य कर रहा है कि शास्त्री जी उस योगी की भाँति हैं जो अपनी मंजिल पर पहुँचने के लिए अपने सर्वस्व तक की बाजी लगा देता है। शास्त्री जी का यह त्याग ही आज उनके जीवन में वरदान की भाँति पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। उनकी महत्त्वपूर्ण उन्नति ही उनके त्याग का ज्वलन्त चित्र है। यदि शास्त्री जी ने त्यागका आंचल ग्रहण न किया होता तो भारत ऐसे देश में उनके लिए कभी यह सम्भव नहीं था कि वे अभाव पूर्ण स्थिति में जन्म लेने और रहने पर उस पद पर पहुँचते जहाँ आज वे हैं।

शास्त्री जी राष्ट्रपिता गांधी जी के परम भक्त हैं। गांधी जी के सत्य, अहिंसा और सादगी के साँचे में उन्होंने पूर्ण रूप से अपने जीवन को ढाला है। वे १९२० और १९२१ ई० से ही खादी पहन रहे हैं। केवल वे ही नहीं, उनकी पत्नी और माँ आदि घर के कुटुम्बी भी खादी के ही वस्त्र धारण करते हैं। शास्त्री जी चर्खा भी चलाते हैं। व बचपन से ही शाकाहारी हैं। उनके सभी कुटुम्बी गांधी जी के 'वष्णव' के पथानुयायी हैं। गांधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किए जाने पर शास्त्री जी ने सोत्साह पढ़ना-लिखना छोड़कर उस आन्दोलन में भाग लिया। यद्यपि उस समय शास्त्री जी की अवस्था अठारह-उन्नीस वर्ष की थी, परन्तु फिर भी व जेल गए। जेल

से लौटने पर वे गांधी जी के रचनात्मक कार्यों में लगे। अछूतोद्धार, ग्राम संगठन, हिन्दू-मुसलिम एकता आदि कार्यों में ही उन्होंने अपना अब तक का जीवन व्यतीत किया है। गांधी जी ने देश की स्वाधीनता के लिए जब-जब रण-यज्ञ की घोषणा की शास्त्री जी ने उसमें बड़ी वीरता और साहस से काम किया। उन्होंने जेलों में, जेलों के बाहर, अपनी गिरफ्तारी के समय, पैरोल पर छूटने के समय आदि किसी अवसर पर भी गांधी जी के सिद्धान्तों का परित्याग नहीं किया। वे सदा गांधी जी की अहिंसा, सत्य और शान्ति के ही अनुयायी रहे हैं।

पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि उनमें अदम्य साहस और तेज का अभाव है। जिस प्रकार गांधी जी अपनी 'शान्ति' में छिपी हुई क्रान्ति से लोगों को विस्मित और चकित कर दिया करते थे उसी प्रकार शास्त्री जी में भी विस्मयकारिणी और प्राणों में जादू का संचार कर देने वाली क्रान्ति की अपूर्व भावना है। पंजाब के वे दिन! लाला लाजपतराय शहीद हो चुके थे। पंजाब की धरती शहीदों के रक्त में रंगी हुई लाल चूनरी ओढ़कर इठला रही थी। सरकार की गर्दन की तनी हुई नसों को तोड़ने के लिए देश के कोने-कोने में स्वयंसेवकों की भरती की जा रही थी। चारों ओर यह खबर फैली हुई थी कि जो भी स्वयंसेवक के रूप में पंजाब की धरती पर कदम रखेगा गोरी सरकार के नर-दानवों की गोलियाँ उसके प्राणों का तन्तु तोड़ देंगी, किन्तु फिर भी दल के दल देश के दीवाने युवक

स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखा रहे थे। शास्त्री जी ने भी अपना नाम स्वयंसेवकों में लिखा लिया। उनके कुटुम्बियों और हितैषियों का हृदय काँप उठा। लोग उन्हें समझाने-बुझाने लगे कि वे स्वयंसेवकों में अपना नाम न लिखायें, पर शास्त्री जी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। उन्होंने यह कहकर सबको निरुत्तर कर दिया कि "देश की पुकार सबसे मुख्य वस्तु है। देश की पुकार के समक्ष स्त्री पुत्र और घर-द्वार कुछ नहीं!" पर शास्त्री जी को पंजाब जाने की आवश्यकता न पड़ी। इसके पश्चात् ही पंजाब से समाचार आया कि अब स्वयंसेवकों के भेजने की आवश्यकता नहीं! आश्चर्य क्या, यदि शास्त्री जी के कोमल हृदय को इससे आघात लगा हो।

कई ऐसे अवसर भी आये हैं जब शास्त्री जी की पत्नी को उनका जेल जाना दुःख का प्रसंग बन जाता था और उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ते थे। शास्त्री जी ऐसे अवसरों पर अपनी पत्नी पर भी असन्तुष्ट होने से न चूके। उन्हें पत्नी का अश्रुपात करना खल जाता था। क्योंकि वे देश को सबसे बड़ा समझते थे। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से वचन लिया है कि वह कभी भी उनकी देश भक्ति के कार्यों में बाधक सिद्ध न होगी। शास्त्री जी की धर्मपत्नी आज तक अपने वचन का निर्वाह बड़ी दृढ़ता और तन्मयता के साथ करती आ रही हैं। शास्त्री जी जो कुछ करते हैं करते हैं, वे अपना आर से कभी कुछ भी नहीं कहतीं! क्या

और उनकी मुस्कुराहट में एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य के मर्म को भी स्पर्श कर सकती है, और वास्तविकता की थाह लगा सकती है। यहाँ शास्त्री जी के 'मौनालाप' की चर्चा करते हुए हमारी दृष्टि दुर्योधन की उस सभा की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहती जिसमें कौरवों और पाण्डवों के बड़े बड़े योद्धा विराजमान थे और सबके बीच में दुःशासन द्रोपदी को नग्न कर रहा था। द्रोपदी की चीख-पुकार पर भीम रह-रहकर उबल रहा था और युधिष्ठिर को भी खरी-खोटी सुना रहा था। भीम की उछल-कूद से कर्ण को भी ताव आ गया। पर दुर्योधन ने कर्ण को शान्त करते हुए कहा—"अरे कर्ण तू व्यर्थ भीम को इतना महत्त्व दे रहा है। जलते हुए तवे पर पड़ी हुई पानी की बूँदों के समान छनछनाते हुए भीम से मुझे रचमात्र भी डर नहीं है मुझे डर तो है उस अर्जुन से जो 'गुमसुम' चुपचाप बैठा हुआ है, और बोल कुछ नहीं रहा है। मैं यह नहीं कहता कि शास्त्री जी अर्जुन हैं, पर मैं यह अवश्य कहूँगा कि शास्त्री जी के 'मौन' और सयमित वार्तालाप के भीतर एक ऐसी ग्राहिणी शक्ति छिपी रहती है जो शीघ्र ही तत्त्व को पकड़ लेती है।

एक बार शास्त्री जी ने स्वयं ससद में अपनी इस शक्ति की ओर इस प्रकार संकेत किया था— मैं छोटे कद का, एक दुबला-पतला मनुष्य अवश्य हूँ पर किसी के शरीर को देखकर उसके बल का अदाज लगाना उचित नहीं है। शरीर के प्रति

लिकन मनुष्य के पास आत्मा नाम की एक वस्तु भी होती है। मैं उस व्यक्ति को वीर और बलवान मानता हूँ जिसके शरीर में बलवान आत्मा का निवास होता है और मैं कह सकता हूँ कि मेरे शरीर के भीतर एक ऐसी ही आत्मा का निवास है।'

वस्तुत शास्त्री जी के भीतर सशक्त और दृढ़ आत्मा का निवास है। इस आत्मा का ही यह जौहर है कि शास्त्री जी बड़े-बड़े संकटों में भी अपने धैर्य को टूटने नहीं देते और उस आत्मा का ही यह प्रताप है कि वे चुपचाप विष की कड़वी घूंट पी जाते हैं। संध्या का समय था। एक दिन शास्त्री जी के एक मित्र उनसे मिलने के लिए आए। शास्त्री जी ने उनके पास उपस्थित होकर उनका आदर-सत्कार किया। वे स्वय उनके लिए अपने घर के भीतर से नाश्ते का सामान लेकर बैठक में गए। बड़े प्रेम से बातचीत हुई। पर उन्होंने शास्त्री जी के समक्ष एक ऐसी बात रखी जिसे पूर्ण करना शास्त्री जी के वश की बात नहीं थी। शास्त्री जी के द्वारा असमर्थता प्रकट किये जाने पर वे उबल पड़े और उन्हें खरी-खोटी सुनाने लगे। शास्त्री जी उनके पास बैठकर चुपचाप कड़वी घूंट पीते रहे। वे खरी-खोटी सुनाते हुए अपने-आप उठ पड़े और बाहर निकल गए। शास्त्री जी ने उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कदाचित् ही ऐसा कोई मंत्री हो, जो इस प्रकार चुपचाप कटूक्तियों के तीखे शर सहन करने की क्षमता रखता हो।

अभी थोड़े ही दिन हुए, शास्त्री जी का जब नेता के रूप में वरण हुआ, तो विदेशी सम्वाददाताओं और फोटोग्राफरों की उनकी कोठी पर भीड़ लग गई। सबने चारों ओर से शास्त्री जी को घर लिया। प्रश्नों की झड़ी सी लग गई। एक से एक सवाल थे—निष्णात थे। अपनी अपनी डायरी में पहले ही से सोच-सोचकर प्रश्न लिखकर लाये थे। शास्त्री जी ने बारी-बारी से एक-एक के प्रश्न का उत्तर बड़े ही धैर्य और बड़ी बुद्धिमानी के साथ दिया। वे उनके प्रश्नों को सुन कर मुस्कुरा दिया करते थे और फिर उनका उत्तर ऐसी मृदुता के साथ देते थे कि वे उनका मुँह ताकने लगते थे। कांफ्रेंस समाप्त होने पर एक व्यक्ति न जो वहाँ खड़े थे, एक विदेशी सम्वाददाता से प्रश्न किया—"कहिए हमारे नए प्रधान मन्त्री को आप लोगों ने कैसा पाया?" उसने निम्नांकित उत्तर देकर वहाँ पर खड़े हुए सब लोगों को चकित कर दिया—"इस छोटे कद के भीतर एक महान् का व्यक्तित्व है।'

सचमुच शास्त्री जी के छोटे कद और उनके मौन तथा समन्वित वार्तालाप में एक महान् व्यक्तित्व की ही झलक मिलती है। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' म श्री हीरालाल जी चौबे ने शास्त्री जी के महान् व्यक्तित्व का चित्र निम्नांकित शब्दों में खींचा है—'व्यक्तित्व की कोई एक निश्चित परिधि या सीमा नहीं है और न उसकी सही परिभाषा की कोई निश्चित

मच्छावसी ही है। व्यक्तित्व उभरता है जीवन-दर्शन, त्याग, तप, आचरण और कर्तव्यों से। जाति धर्म पद पहनावे आदि से व्यक्ति प्रभावशाली हो सकता है पर व्यक्तित्व की छाप के पीछे कुछ अन्तर्निहित वैशिष्ट्य ही व्यक्तित्व को सवारते और उभारते हैं। देखने में शास्त्री जी का व्यक्तित्व उस व्यक्तित्व की कसौटी पर खरा नहीं उतरता जिसका आधार केवल बाह्य प्रदर्शन है। व्यक्तित्व की परख का आधार तो उनमें अन्तर्निहित वह मौलिकता स्वाभाविकता और सहजता है, जिसके बल पर आज इस विशाल जनतांत्रिक देश ने उन्हें इतने उत्तरदायी पद पर प्रतिष्ठित किया है।"

सरल एवं उदार

शास्त्री जी बड़े ही सरल और सीधे-सादे व्यक्ति हैं। उनमें आडम्बर और अहम् नाम को भी नहीं है। प्रधान मंत्री जैसे महान् पद पर आसीन होने के पश्चात् भी उनके रहन-सहन में और उनके स्वभाव में तनिक भी हेर-फेर नहीं हुआ है। वे जिस प्रकार पहले धोती और कुर्ता पहनते थे उसी प्रकार आज भी वे धोती और कुरता ही पहनते हैं। जाड़े के दिनों में, जब भयानक शीत पड़ता है, तब उनके बदन पर कोट अवश्य दिखाई पड़ता है। पर आज भी वे 'ओवरकोट' आदि का इस्ते-माल नहीं करते। उनके पास आज भी इस प्रकार की चीजें

नहीं है। अभी कुछ दिन पूर्व जब 'बास काण्ड' के सम्बन्ध में उन्हें कश्मीर जाना पड़ा था, तो वे शीत से बचने के लिए श्री नेहरू से 'ओवरकोट' मांगकर ले गए थे। प्रधान मन्त्री के निर्वाचन के पश्चात् ही इंग्लैंड आने का जब प्रश्न आया, तो उनके सामने पहनावे की समस्या ने भी एक विकट रूप धारण कर लिया। विचार विमर्श होने लगा कि वे इंग्लैंड कौन-सी चीज पहनकर आयेंगे ? क्या पैन्ट और कोट ! पर शास्त्री जी ने तो पैन्ट और कोट की कौन कहे विवाह के दिन को छोड़कर कभी चूड़ीदार पायजामे का भी व्यवहार नहीं किया। यदि शास्त्री जी संयोगवश अस्वस्थ न हो जाते और राष्ट्र मण्डल की बैठक में सम्मिलित होने के लिए इंग्लैंड जाते तो कदाचित् उनकी वेश भूषा वही होती, जो आज तक रही है। नेहरू जी के बार-बार व्यंग्य और उपहास किए जाने पर भी जब शास्त्री जी ने अपनी 'सनातन' वेश भूषा का परित्याग नहीं किया तो वे कदाचित् ही इंग्लैंड जाने पर अपनी वेश-भूषा का परित्याग करते। वेश भूषा की सादगी के क्षेत्र में शास्त्री जी गांधी जी और राजर्षि टण्डन जी के पथानुयायी हैं। जिस प्रकार गांधी जी और राजर्षि टण्डन जी सदा भारतीय वेश भूषा को ही महत्त्व देते रहे हैं, उसी प्रकार शास्त्री जी की भी भारतीय वेश भूषा में ही आस्था है।

शास्त्री जी केवल वेश-भूषा में ही सादे और सरल नहीं हैं, उनका हृदय भी बड़ा ही सरल और निश्छल है। वे जिस

प्रकार पहले लोगों से हँसते हुए सरलता और निष्कपटता के साथ मिलते-जुलते थे वही सरलता वही निश्छलता और वही निष्कपटता आज भी उनमें मौजूद है। पदों और वैभव के शिखर पर पहुँचने पर बड़े-बड़े महामानवों को भी बदलते हुए देखा गया है। पर शास्त्री जी के भीतर ऐसी महानता है कि उसे पद और वैभव का अहम् स्पर्श तक नहीं कर सका है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में भरत के चरित्र का अंकन करते हुए लिखा है कि चाहे संसार में 'असम्भव' घटनाएं 'सम्भव' के रूप में परिवर्तित हो जाएँ पर भरत के मन म राज्य मद का सचार नहीं हो सकता। भरत हमारे अतीत काल के श्रेष्ठ महामानव थे। पर हम तो आज गोस्वामी जी के उक्त कथन को शास्त्री जी में चरितार्थ होते हुए देख रहे हैं। संभव है कुछ लोग इसे अतिशयोक्ति कहें पर जो लोग शास्त्री जी के भीतरी और बाहरी जीवन से परिचित हैं वे सशक्त वाणी में यही कहेंगे कि शास्त्री जी भरत के समान ही पद की गुरुता में आ अपने मन को—अपनी कामनाओं को बाँध कर रख सके हैं।

शास्त्री जी भीतर और बाहर एकसमान ही व्यवहार करते हैं। वे अपने घर के भीतर जब अपने पुराने मित्रों परिचितों और स्नेहियों को देखते हैं, तो अपने आप ही उनके पास बठ जाते हैं और कुशल समाचार पूछते हैं। कभी-कभी खाना खाते समय वे लोगों की थाल में झुककर देखते हैं, और पूछते

हैं, क्या क्या-क्या रहे हैं ? बच्चों को खेलते हुए देखकर उन्हें अपनी गोद में उठा लेते हैं और उनके साथ मनोविनोद करते हैं। कभी-कभी अपने कमरे में फर्श पर चटाई पर बैठकर बच्चों के साथ खेलते हैं। बच्चों के साथ खेलने में वे भेद भाव नहीं करते। वे जिस प्रकार अपने बच्चों को प्यार करते हैं उसी प्रकार दूसरे लोगों के बच्चों के लिए भी उनके मन में प्यार का सागर छलकता रहता है। वे अपने नौकर रामनाथ के बच्चों को भी अपने बच्चों के समान ही प्यार देते हैं। बच्चों से प्यार करने में वे थी नेहरू के समान ही मृदुल और स्नेह मय हैं। जिस प्रकार बच्चों को देखते ही थी नेहरू का हृदय स्नेह से उमड़ पड़ता था, वही गुण शास्त्री जी में भी है।

शास्त्री जी में अहम् का लवलेश तक नहीं है। कदाचित ही उनके मन में कभी यह बात आई हो कि वे मन्त्री और प्रधान मन्त्री हैं। कई बार ऐसे अवसर उपस्थित हुए हैं जब उनकी कार खराब हो गई है, या देर से पहुँची है, तो शास्त्री जी बिना भिभी झिझक के पदल ही दफ्तर से घर की ओर चल पड़े हैं। कई बार जाड़े के दिनों में लोगों ने उन्हें कम्बल ओढ़-कर इण्डिया गेट के पास घूमते हुए भी देखा है। मिलने-जुलने और बातचीत करने में भी शास्त्री जी बड़े सरल हैं। वे प्रायः रात में आठ-नौ बजे भेंट मुलाकात करते हैं, भले ही रात के बारह बज जायें, पर जब तक वे आगन्तुकों से मुलाकात नहीं कर लेंगे, तब तक आराम नहीं करते। भेंट-मुलाकात के लिए उनके सेक्रेटरी

सूची अवश्य तयार करते हैं पर शास्त्री जी अपने को उससे मुक्त रखते हैं। कभी-कभी वे ऐसे लोगों से बहुत पहले मिलते हैं जिनका नाम सूची में नहीं होता पर जो उनसे मिलने के लिए व्यग्र रहते हैं। यहाँ शास्त्री जी की मिलनसारी और उनकी सरलता से सम्बन्ध रखने वाली एक घटना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा—एक बार वहुस्मृत विदेश मन्त्री शास्त्री जी से मुलाकात करने के लिए उनके बगले पर गए। मुलाकात के लिए कई दूसरे लोग और ऊँचे अधिकारी भी प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। शास्त्री जी बाहर निकलकर इन सभी लोगों से भेट-मुलाकात करने लगे। सहसा शास्त्री जी की दृष्टि वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक वृद्ध पर पड़ी जो अपने जीर्ण-शीर्ण कपड़ों में शास्त्री जी की ओर बड़ी श्रद्धा और उत्कंठा से देख रहा था। शास्त्री जी शीघ्र ही लोगों से क्षमा मांगकर उस वृद्ध व्यक्ति के पास आ पहुँचे। वृद्ध की आँखें छलछला उठीं। उसने बड़ी श्रद्धा से अपनी बगल से एक पोटली खोली और उसे शास्त्री जी के सामने उपस्थित किया। उसमें उसके खेत के हरी मटर के दाने थे। शास्त्री जी ने बड़े प्रेम से दो-तीन दाने अपने मुँह में डाले और शेष को अपने बगले के भीतर भेज दिया।

वेश भूषा की भाँति ही शास्त्री जी का खाना-पीना भी बड़ा सादा है। वे प्रायः दिन के दो बजे के लगभग सादा भोजन लेते हैं। भोजन लेने में व गांधी जी के नियमों का पालन करते हैं। वे प्रायः ऐसे लोगों को चेतावनी भी दिया करते हैं जो

गरिष्ठ भोजन लेते हैं और भोजन में अनियमितता बरतते हैं। उनका कहना है कि स्वस्थ रहने के लिए सादा भोजन अमृत के समान ही प्रभावपूर्ण होता है। शास्त्री जी के भोजन में चपातियाँ दाल, सब्जी और सलाद आदि होता है। मूँग की खिचड़ी वे प्रायः लिया करते हैं। पाव रोटी भी वे नाश्ते में लेते हैं। हरे मटर की पूरी उन्हें बहुत अच्छी लगती है। शास्त्री जी का भोजन उनकी धर्मपत्नी स्वयं ही तैयार करती हैं। उनके भोजन में वे बड़ी रुचि लेती हैं। शास्त्री जी प्रायः अपने घर में भोजन करते हैं। भोजन करने के समय उनकी धर्मपत्नी उपस्थित रहती हैं। शास्त्री जी की दोनों कन्याएँ भी शास्त्री जी के खाने-पीने का बहुत खयाल रखती हैं। शास्त्री जी की पुत्रवधू श्री हरेकृष्ण की धर्मपत्नी भी शास्त्री जी के भोजन और उनकी देख रेख में अधिक रुचि रखती हैं। यद्यपि शास्त्री जी किसी की देख रेख और सेवा-शुश्रूषा की अपेक्षा नहीं करते, पर उनके परिवार के सबके सब उनकी सेवा के लिए उत्सुक रहते हैं।

शास्त्री जी बड़े उदार और सहृदय हैं। पुलिस मंत्री से लेकर प्रधान मंत्री के पद तक उन्होंने न जाने कितने अभाव-ग्रस्तों, कष्ट-पीड़ित स्त्रियों, और स्नेहियों की सहायता की है। किसी की भी दुखद कहानी को सुनकर वे चिन्ता में पड़ जाते हैं और उसे दूर करने के लिए निदान खोजने लगते हैं। जहाँ तक उनका वश चलता है वे लोगों की सहायता करने में कभी

नहीं करते। मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो शास्त्री जी की सहायता से ही अपने जीवन को स्थिर रख सके हैं। कई ऐसे लोग हैं जो शास्त्री जी से मासिक के रूप में भी सहायता पाते हैं। कई संस्थाओं की भी शास्त्री जी बराबर सहायता किया करते हैं। शास्त्री जी और उनके कुटुम्बियों की धर्मप्रियता को सुनकर, प्राय: साधु-संन्यासी, महात्मा धार्मिक ब्राह्मण, और दीन-हीन जन उनके पास आते हैं। देर भले ही हो जाय पर शास्त्री जी सबसे मिलते हैं, और सबकी यथोचित सहायता भी करते हैं।

शास्त्री जी की उदारता और सरलता के कारण लोग उन्हें धोखा भी दे जाते हैं। पर शास्त्री जी ऐसे लोगों को शीघ्र ही पहचान भी जाते हैं। और जब पहचान जाते हैं, तब फिर उनकी मूर्ति अपने हृदय पटल पर अंकित कर लेते हैं। अपनी बातचीत में अपने व्यवहार में, वे उनपर अपने मन का भाव प्रकट नहीं होने देते, पर फिर कभी वे उन्हें अपने हृदय की सहानुभूति और अपने हृदय का स्नेह नहीं देते। मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो अपने कपटपूर्ण व्यवहार के ही कारण शास्त्री जी के स्नेह और उनकी सहानुभूति से वंचित हो गए हैं। प्रिय से प्रिय व्यक्तियों को भी शास्त्री जी कपटपूर्ण व्यवहार करने पर अपने हृदय से पृथक् कर देते हैं। वे उन व्यक्तियों से अधिक प्रसन्न होते हैं, जो सचाई के साथ अपनी बुराई भी प्रकट कर दिया करते हैं। ऐसे लोगों को अपराध

करने पर भी प्राय वे क्षमा कर दिया करते हैं।

शास्त्री जी की उदारता और क्षमाशीलता के प्रसंग में हमें उनके जीवन की उस समय की दो घटनाएँ याद आ जाती हैं, जब वे उत्तर प्रदेश में पुलिस मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित थे—'एक दिन शास्त्री जी कहीं दौरे पर जा रहे थे। अचानक उनकी कार खराब हो गई। वे निकट के थाने में रिपोर्ट लिखाने या सहायता के लिए गए। संयोगवश थाने का इंचार्ज दारोगा उस समय थाने पर नहीं था। शास्त्री जी ने मुंशी के सामने अपनी कठिनाइयाँ रखीं। पर मुंशी ने उन्हें झिड़क दिया और कहा, इस प्रकार के बहुत से लोग आते हैं और अपनी इस प्रकार की कठिनाइयाँ बताते हैं। मैं कुछ नहीं कर सकता! शास्त्री जी थाने से निकल ही रहे थे कि इंचार्ज आ गया। वह शास्त्री जी को पहचानता था। शास्त्री जी को देखते ही उन्हें झुककर सलाम किया, और फिर पलक मारते मारते थाने में बिजली की भाँति खबर फैल गई कि पुलिस मंत्री जी थाने में! मुंशी जी के तो प्राण काँप गए। वे दौड़कर शास्त्री जी के पास पहुँचे और बोले—'हुजूर भूल हो गई।' शास्त्री जी ने हँसकर मुंशी जी की पीठ थपथपाई और फिर वे चल दिए।"

दूसरी घटना आगरे की है। शास्त्री जी रेल द्वारा आगरे पहुँचने वाले थे। स्टेशन पर स्वागत करने वालों की भीड़ जमा थी। बड़े-बड़े नागरिक, कांग्रेसजन और ऊँचे अधिकारी

स्टेशन पर उपस्थित थे। गाड़ी स्टेशन पर पहुँचते ही लोग प्रथम श्रेणी के डिब्बों की ओर दौड़ पड़े। पर शास्त्री जी तो तीसरे दर्जे के डिब्बे में थे। वे डिब्बे से उतरकर गेट की ओर चल दिए। गेट पर कांसटेबिल तनात था। उसने शास्त्री जी को बाहर जाने से रोक दिया। कहा "हमारे पुलिस मन्त्री जी इसी गाड़ी में आये हैं। वे जब तक बाहर नहीं निकल जायेंगे, किसी को बाहर नहीं जाने दिया जायगा।" शास्त्री जी चुपचाप गेट पर एक ओर खड़े हो गए। सहसा पुलिस कप्तान की उनपर दृष्टि पड़ी और वे दौड़कर उनके पास आ पहुँचे। कप्तान ने शास्त्री जी का अभिवादन किया। अब तो कांसटेबिल के देवता कूँच कर गए। शास्त्री जी ने आगे बढ़कर उसकी भी पीठ थपथपाई। और फिर वे जयनादों के बीच में गेट के बाहर निकल गए।

शास्त्री जी की उदारता और क्षमाशीलता ने ही उन्हें विरोधियों के बीच में भी आदर और प्रेम का पात्र बनाया है। कितने ही ऐसे लोगों को मैं जानता हूँ, जो राजनीति के क्षेत्र में शास्त्री जी के प्रतिस्पर्द्धी हैं पर व्यक्तिगत रूप में वे शास्त्री जी के प्रति आदर ही प्रदर्शित करते हैं। कांग्रेस में कितने ही ऐसे लोग हैं जो शास्त्री जी की उन्नति से उनसे ईर्षा भी करते हैं। पर जब शास्त्री जी के गुणों की चर्चा चलती है तब उन्हें भी मौन होकर मस्तक झुका लेना पड़ता है।

जन्म एवं बाल्यावस्था

शास्त्री जी का जन्म १९०३ ई० में २ अक्टूबर के दिन मुगलसराय में उनके नाना श्री हजारीलाल जी के घर पर हुआ। हजारीलाल जी मुगलसराय में रेलवे स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। शास्त्री जी भाई के रूप में अकेले हैं। पर उनकी दो बहनें हैं जिनमें एक का नाम श्रीमती सुन्दरी देवी और दूसरी का नाम श्रीमती कलावती है। श्रीमती सुन्दरीदेवी इस समय भी मौजूद हैं पर छः-सात वर्ष हुए, श्रीमती कलावती का स्वर्गवास हो गया। श्रीमती सुन्दरीदेवी का— विवाह छपरा में हुआ था। उनके पति श्री शम्भूचरण

हाई कोर्ट के सुप्रसिद्ध वकीलों में से थे। पर दुःख है कि अल्पावस्था में ही उनका स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र श्री शंकरशरण जो उच्च शिक्षा प्राप्त ऊँचे विचार के व्यक्ति हैं वे आजकल मुंगेर में जिलाधीश के पद पर प्रतिष्ठित हैं। स्व॰ सुन्दरीदेवी सुप्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्री हैं। गांधी जी के रचनात्मक कार्यों में उनकी अधिक रुचि है। भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन में भी वे भाग ले चुकी हैं और देश सेवा के पथ पर विविध संकटों का सामना भी कर चुकी हैं। वे आजकल पटना में रहती हैं बिहार विधान सभा की सदस्या हैं। पिछले चुनावों में भी उन्हें विजय प्राप्त हुई थी। शास्त्री जी की दूसरी बहन सुश्री कैलाशवती का विवाह गाजीपुर में हुआ था। कैलाशवती की सन्तानें भी ऊँचे पदों पर हैं और समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है।

शास्त्री जी की बाल्यावस्था मुगलसराय, मिर्जापुर और रामनगर में व्यतीत हुई। बाल्यावस्था में उनके नाना ही उनके एकमात्र आधार थे। अतः वे कभी मिर्जापुर और कभी मुगलसराय में अपनी माता जी के पास रहते थे। कभी-कभी रामनगर में भी रहते थे। बचपन में भी शास्त्री जी बड़े सीधे-सादे और सरल थे। वे प्रायः चुपचाप रहते थे। अधिक न बोलने की आदत उनमें बचपन से ही है। पर कभी-कभी शरारत करने से भी बाज न आते थे। एक बार वे अपनी शरारत के कारण ही, काशी के मणि-कर्णिका के कुण्ड में डूबते-डूबते

बच गए थे। वे अपनी माता जी के साथ गंगा-स्नान के लिए गये थे। उनकी माता जी उन्हें गंगा के तट पर बिठाकर गंगा में स्नान करने लगीं। शास्त्री जी चुपचाप अपने स्थान से उठे, और उस कुण्ड के पास जा पहुँचे, जिसे मणि-कर्णिका कुण्ड कहते हैं। उत्सुकतावश कुण्ड के भीतर झाँकने लगे। कुछ लोगों ने दौड़कर उन्हें पकड़ लिया। नहीं तो आश्चर्य क्या कि वे कुण्ड के भीतर कूद पड़ते।

शास्त्री जी की बाल्यावस्था काशी के दारानगर नामक मुहल्ले में भी व्यतीत हुई। दारानगर में शास्त्री जी की मौसी रहती थी। उनकी मौसी का नाम श्रीमती श्यामप्यारी और मौसा का नाम श्री रघुनाथप्रसाद था। श्री रघुनाथ-प्रसाद ऊँचे विचार के सहृदय व्यक्ति थे। आठ वर्ष की अवस्था में शास्त्री जी दारानगर में रहने लगे थे। पर कभी-कभी वे रामनगर भी जाते थे।

शास्त्री जी की बाल्यावस्था की दो घटनाएँ बड़ी रोचक, शिक्षाप्रद और प्रेरणादायिनी हैं। अतः उनका उल्लेख करना यहाँ अनुचित न होगा। पहली घटना उस समय की है, जब शास्त्री जी की अवस्था पाँच-छः वर्ष की थी। एक दिन शास्त्री जी स्कूल में छुट्टी होने के पश्चात् अपने साथियों के साथ घर की ओर लौट रहे थे। मार्ग में एक बगीचा पड़ता था, जिसमें आम के फल लटक रहे थे। फलों को देखते ही लड़कों के मुँह में पानी भर आया और वे बगीचे में

फलों पर हाथ साफ करने लगे। पर शास्त्री जी बगीचे के बाहर ही खड़े रहे। सहसा एक साथी बोल उठा—"नन्हें, तुम भी क्यों नहीं आम तोड़ते?" शास्त्री जी का बचपन में प्यार का नाम नन्हें था। उनके घर के लोग और संगी-साथी उन्हें प्रायः इसी नाम से पुकारा करते थे। शास्त्री जी भी अपने साथी के प्रोत्साहन से बगीचे में पहुँचे। पर उन्होंने फलों पर हाथ नहीं लगाया। उन्हें गुलाब का फूल बहुत सुन्दर लगा और एक गुलाब का फूल उन्होंने तोड़ लिया। इसी समय बगीचे के माली की लड़कों पर दृष्टि पड़ी। वह हांक लगाकर दौड़ा। लड़के भाग खड़े हुए। पर शास्त्री जी अपने स्थान पर वहीं के वहीं खड़े रहे। माली ने उन्हें पकड़कर एक चाँटा जड़ दिया। शास्त्री जी रो पड़े और सुबकते हुए बोले—'तुमने मुझे चाँटा क्यों लगाया? क्या तुम्हें मालूम नहीं है

कि मेरा बाप ... है?' माली ने इतना सुनते ही शास्त्री

जी को ... कसकर लगाया, और कहा— 'फिर

एकमात्र ... लगनी चाहिए। क्योंकि तुम्हें सबसे

सराय ... चाहिए।'

नगर में भी ... जी के प्राणों में हिलोर पैदा

और सरसों ... मन उस घटना को सोचता

की आदत ... अनुभव मुझे उससे अधिक

करने से भी ...

कारण ही, ... शास्त्री जी बचपन

की सीढ़ियों को पार कर गए थे—"उन दिनों माघ का नौमि ही रामनगर में मेला लगा करता था। पर माघ की नौमि उन दिनों रामनगर जाने के लिए पुल नहीं बना था। उन दिनों जिसे भी रामनगर जाना होता था या रामनगर से काशी आना होता था, उस नाव का ही सहारा लेना पड़ता था। एक दिन शास्त्री जी भी अपने कुछ साथियों के साथ मेला देखने के लिए रामनगर गए। शाम होने पर जब मेला समाप्त हो गया, तो लोग नावों पर बैठकर अपने घर लौट आए। पर शास्त्री जी वहीं देर तक चुपचाप गंगा के तट पर बैठे रहे। उनके कई मित्रों और परिचितों ने उनसे चलने के लिए कहा पर फिर भी वे चुपचाप अपने स्थान पर बैठे रहे। इसका कारण यह था कि उनके पास नाव का उतराई देने के लिए पैसे नहीं थे। यद्यपि शास्त्री जी चाहते तो बड़ी आसानी से किसी नाव पर बैठकर उस पार जा सकते थे। क्योंकि नाव के कई मल्लाह भी उनसे परिचित थे। पर उनके स्वाभिमानी स्वभाव ने उन्हें ऐसा न करने दिया। वे वहीं देर तक गंगा के किनारे पर बैठे रहे और सोच-विचार करते रहे। अन्त में उन्होंने अपने साहस और पुरुषार्थ का आश्रय लिया। वे गंगा में कूद पड़े, और तैरते हुए उस पार हो गए। उस समय गंगा भी बाढ़ पर थी। बढ़ी हुई गंगा में जिसने भी शास्त्री जी को तैरकर उस पार जाते देखा उनके साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

महायुद्ध के दिनों में भारतीय नेताओं को यह वचन दिया था कि महायुद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे देंगे। अंग्रेजों के इसी आश्वासन पर भारतीय नेताओं ने प्रथम युद्ध में खुलकर अंग्रेजों के पक्ष का समर्थन किया। अंग्रेजों ने अपनी विजय के लिए स्वतन्त्रता पूर्वक भारत को धन और जन-शक्ति का उपयोग किया। परिणामस्वरूप अंग्रेज विजयी हुए। किन्तु जब युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भारतीय नेताओं ने औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की, तब अंग्रेज अपने वचन से मुकर गये। कुछ देने की कौन कहे उल्टे वे कड़े-कड़े कानूनों के द्वारा स्वाधीनता की प्रवृत्ति को कुचलने लगे और सभाओं तथा जुलूसों पर रोक लगा कर नेताओं को बन्दी बनाने लगे। परिणामतः भारत में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक असन्तोष की आंधी दौड़ उठी। गांधी जी भारत की राजनीति के रंगमंच पर आ चुके थे। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के जन्मसिद्ध अधिकारों को लेकर श्वेतांगी शासन से उन्होंने जो संघर्ष किया था, उससे भारत के कोने-कोने में उनका नाम गूंज उठा था और भारतीय जनता ने उनमें अपनी श्रद्धा के साथ ही साथ अपनी आशा और आकांक्षाओं को केन्द्रित कर दिया था। अंग्रेजों के कठोर कानूनों, और उनके दानवी दमन चक्रों ने गांधी जी की आत्मा को भी क्षुब्ध कर दिया। उन्होंने अंग्रेजों को बार-बार चेतावनी दी। पर अंग्रेज अपने दमन चक्र से बाज न आए। अन्त में

उन्होंने विवश होकर भारतीय जनता का आह्वान किया—
"भारत की स्वाधीनता के लिए अंग्रेजी शासन का बहिष्कार करो। विदेशी कपड़ों को छोड़ो, स्कूल-कालेजों में पढ़ाई बन्द करो, और न्यायालयों में धरना दो।"

गांधी जी के आह्वान पर भारत के कोने-कोने में असहयोग का पाञ्चजन्य बज उठा। लोग बहुमूल्य विदेशी कपड़ों की होलियां जलाने लगे। दल के दल में युवक स्त्रियाँ, कन्याएँ, बूढ़े और बच्चे अपने-अपने घरों से निकलकर विदेशी कपड़ों और शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करने लगे। विद्यार्थियों ने स्कूल और कालेज छोड़ दिए। वकीलों और बड़े-बड़े बरिस्टरों ने अपनी-अपनी प्रेक्टिसें बन्द कर दीं। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू, स्वनामधन्य श्री जवाहरलाल नेहरू, स्वर्गीय डा० राजेन्द्रप्रसाद और स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजनदास तथा स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि कितने ही बड़े-बड़े वकील, नेता और विद्वान गांधी जी के आह्वान पर अपने-अपने काम-काज को छोड़कर स्वाधीनता के रण-स्थल में कूद पड़े। चारों ओर जीवन और जागृति की लहर सी दौड़ गई। ऐसी लहर दौड़ पड़ी, जिसने सबके प्राणों में हुंकार पैदा कर दी—सबकी रगों में एक अद्भुत जोश का रव-सा गुंजा दिया।

शास्त्री जी की अवस्था उस समय सोलह-सत्रह वर्ष की थी। कठिनाइयों की खाइयां भी उनके समक्ष थीं, पर उनके जीवन के भावी देवता ने उनके प्राणों में भी देश भक्ति का शंख फूंका और

वे भी बिना किसी सोच-विचार के अपनी पढ़ाई लिखाई छोड़ कर गांधी जी के आह्वान पर रण-स्थल में कूद पड़े। उनकी माँ ने हितैषियों ने और उनके संरक्षकों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया उन्हें समझाने की चेष्टा की, पर सब निष्फल। पर्दे की ओट में बैठा हुआ शास्त्री जी का भावी देवता अब उनका हाथ पकड़ चुका था। शास्त्री जी असहयोग की आंधी में उड़ उड़कर देश प्रेम का गीत गाने लगे— कभी शराब की दूकान पर पिकेटिंग, कभी विदेशी वस्त्रों की होली, और कभी जुलूस तथा सभा का संगठन। अंग्रेजों का दमन चक्र तीव्र गति से चल रहा था। बड़े-बड़े नेता बन्दी बनाए जा चुके थे। लाठियों और गोलियों की वर्षा रोज ही हुआ करती थी। गिरफ्तारियों की भी धूम-धाम थी। शास्त्री जी भी गिरफ्तार हुए और ढाई वर्ष के लिए जेल में डाल दिए गए। यह शास्त्री जी की पहली जेल यात्रा थी। यहीं से शास्त्री जी के राजनीतिक जीवन का प्रथम अध्याय भी प्रारम्भ होता है। शास्त्री जी की भाँति ही भारत के कितने ही बड़े-बड़े नेताओं ने भी असहयोग आन्दोलन से ही राजनीति में प्रवेश किया। उनमें कितने ही भारत के शिखर के नेता बनकर अपने नाम को अमर कर गए हैं और कितने ही अब भी विद्यमान हैं। शास्त्री जी उनमें से एक हैं।

काशी विद्यापीठ में

१९२२ ई० में चौरीचौरा का हत्याकांड हुआ। गांधी जी

ने उससे क्षुब्ध होकर असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिया। पर अब तो स्वाधीनता की आग पदा हो चुकी थी। असहयोग आन्दोलन में जिन लोगों ने देश के चरणों पर अपना सब कुछ लुटा दिया था, अब उनके लिए स्वाधीनता की अन्तिम मंज़िल पर पहुँचने के अतिरिक्त कोई चारा न था। लोग अब लम्बी-लम्बी सज़ाएँ काटकर जेलों से निकले, तब फिर नए सिरे से अपने अपने कार्यों में लग गए। गांधी जी जब जेल से बाहर आए, तो उन्होंने कांग्रेसजनों के सामने हिन्दू-मुसलिम एकता, ग्राम संगठन, अछूतोद्धार, किसान संगठन और चर्खा तथा खादी प्रचार आदि रचनात्मक कार्य रखे। लाखों लोग गांधी जी के आदेशानुसार इन कार्यों में लग गए। शास्त्री जी जब अपनी सज़ा पूरी करके जेल से बाहर निकले, तो वे भी इन्हीं कार्यों में भाग लेना चाहते थे। पर उनके हितैषियों ने उन्हें प्रेरणा दी कि वे अपनी अधूरी शिक्षा को पूर्ण कर लें। शास्त्री जी ने इसे ठीक ही समझा। क्योंकि जीवन-क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए ज्ञान के सम्बल की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है।

शास्त्री जी ने अपनी अधूरी शिक्षा को पूर्ण करने के लिए काशी विद्यापीठ में नाम लिखाया। उन दिनों काशी विद्यापीठ में स्वर्गीय डा० भगवानदास, स्वर्गीय नरेन्द्रदेव आचार्य, और डा० सम्पूर्णानन्द जैसे उद्भट विद्वान और देश भक्त अध्यापन का कार्य करते थे। शास्त्री जी का इन विद्वानों का सम्पर्क प्राप्त

हुआ। काशी विद्यापीठ के शान्त और पवित्र वातावरण में रहकर उन्होंने इतिहास दर्शन धर्मशास्त्र और समाजशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा प्राप्त की। शास्त्री जी ने १९२५ ई० में काशी विद्यापीठ से 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त की।

शास्त्री जी के सहपाठी श्री टी० एन० सिंह ने जो आज कल केन्द्र में भारी इन्जीनियरिंग के मन्त्री हैं शास्त्री जी के विद्यार्थी जीवन का चित्र इस प्रकार खींचा है—'शास्त्री जी जैसा कि सभी लोग जानते हैं कद में छोटे हैं। उस समय और भी छोटे थे। घर के सभी लोग उन्हें 'नन्हें' कहा करते थे। वे भी नानक के इस दोहे को बराबर दोहराया करते थे—

> नानक नन्हे में रहो जैसी नन्हीं दूब।
> और रूख सूख जायगी दूब-दूब की दूब॥

यों तो हम सभी कभी न कभी कोई गीत या पद्य गुन गुनाते हैं मैंने शास्त्री जी को भी अक्सर उक्त दोहे को दोहराते हुए सुना है। ऐसा मालूम होता है कि उस समय उन्होंने निश्चय कर लिया था कि सारी जिन्दगी वह विनम्रता सरलता और सफाई से रहेंगे।'' काशी विद्यापीठ की विद्यार्थी सभा में वाद-विवाद के आयोजन हुआ करते थे। एक बार उसमें बड़े उद्योगों और कुटीर उद्योगों के सम्बन्ध में वाद-विवाद हो रहा था। उसमें वे (शास्त्री जी) बड़े उद्योगों के पक्षपाती थे, और मैंने छोटे उद्योगों का पक्ष लिया था। बस वह उद्योग

मन्त्री हुए तो उन्हें बड़े उद्योगों की देख भाल तो करनी ही पड़ी, पर उनका जोर बराबर छोटे उद्योगों पर ही रहा। उसके बाद कुछ ऐसी बातें हुईं कि मैं योजना आयोग का सदस्य होने के नाते बड़े उद्योगों का समर्थन करने लगा। ऐसी बातों में जिन्दगी में उलट-फेर हुआ ही करते हैं। उन्होंने भी एक बार इसका जिक्र सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड की बैठक में किया था। वह मुझे अभी तक याद है। उसके बाद से मैंने भी योजना आयोग में अपना धर्म समझा कि जहाँ तक हो सके, छोटे उद्योगों का समर्थन करूँ।"

लोक सेवक मण्डल के सदस्य

शास्त्री जी काशी विद्यापीठ की सर्वोच्च परीक्षा पास करने के पश्चात् जीवन-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे अब अपने जीवन का ताना-बाना किस प्रकार बुनें। स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी बहुत पहले ही अपनी 'लोक-सेवक मण्डल' नामक संस्था का निर्माण कर चुके थे। इस संस्था का उद्देश्य उन राजनीतिक कार्यकर्ताओं को मासिक रूप में सहायता देना था, जो इस संस्था के सदस्य के रूप में आजीवन देश-सेवा का व्रत करते थे। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् सैकड़ों-सहस्रों व्यक्तियों ने मण्डल की सदस्यता स्वीकार करके देश-सेवा का संकल्प किया। शास्त्री जी का भी ध्यान मण्डल की ओर आकर्षित हुआ। उनके

मित्रों और हितैषियों ने भी उन्हें परामर्श दिया कि मण्डल की सदस्यता स्वीकार कर लें। शास्त्री जी को भी लोगों की राय उचित जँची और वे लाला जी के पास गए। उन्होंने शास्त्री जी को मण्डल का सदस्य बना लिया।

शास्त्री जी मण्डल के सदस्य के रूप में लोक सेवा में प्रवृत्त हो गए। वे दलितों अछूतों और किसानों मजदूरों की सेवा में लग गए। खादी और चर्खे के प्रचार में भी योग देने लगे। शास्त्री जी ने बड़ी निष्ठा और कर्मठता के साथ मण्डल के कार्यक्रमों की पूर्ति की। उन्होंने अपनी सचाई और अपनी लगन से मण्डल के सदस्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।

शास्त्री जी मुजफ्फरनगर में

शास्त्री जी मण्डल की सदस्यता ग्रहण करने के पश्चात् मुजफ्फरनगर चले गए, और वहीं रहकर अछूतों और दलितों की सेवा करने लगे। उनके साथ उनकी माता जी भी मुजफ्फर-नगर में रहती थीं। शास्त्री जी प्रायः अछूतोद्धार के सिलसिले में मेरठ सहारनपुर आदि स्थानों के दौरे किया करते थे। वे कई-कई दिन तक प्रायः दौरे पर रहा करते थे। श्री अलगूराय शास्त्री और श्री विश्वम्भरनारायण शर्मा आदि कार्यकर्ता भी शास्त्री जी के साथ ही थे। शास्त्री जी की माता जी को कभी-कभी इन सभी लोगों का खाना भी बनाना पड़ता था। शास्त्री जी के घर पर प्रायः कार्यकर्ताओं का दल एकत्र हुआ करता

था। शास्त्री जी का सबके साथ बड़ा मेल-जोल और स्नेहमय बर्ताव रहता था। सभी लोग शास्त्री जी की लगन उनके परिश्रम, और उनके प्रेम-पूर्ण बर्ताव की प्रशंसा किया करते थे। शास्त्री जी ने थोड़े ही दिनों में अपने बर्ताव से सबको विमुग्ध कर लिया, और मुजफ्फरनगर जनपद के कार्यकर्त्ताओं में उनका मुख्य स्थान हो गया। पर कुछ दिनों के पश्चात् शास्त्री जी को इलाहाबाद चला जाना पड़ा और इलाहाबाद ही उनका मुख्य कार्य क्षेत्र हो गया। इसे प्रकृति और दैविक शक्ति की प्रेरणा समझना चाहिए कि शास्त्री जी का कार्य-क्षेत्र प्रयाग हुआ, क्योंकि प्रयाग में ही शास्त्री जी को वे साधन और स्वर्ण अवसर प्राप्त हुए, जिनके कारण वे आज उन्नति के शिखर पर पहुँच सके हैं।

दीक्षा

शास्त्री जी के गुरु

शास्त्री जी में सद्गुणों का विकास किस प्रकार हुआ— इसपर भी प्रकाश डालना उचित ही होगा। यह सच है कि शास्त्री जी में प्रकृत रूप से गुणों और विशिष्टताओं के अंकुर थे, पर यदि उन अंकुरों की योग्य, विद्वान और चरित्रनिष्ठ गुरुओं तथा आचार्यों के द्वारा देख-रेख न की गई हो तो यह संभव नहीं था कि उनसे इस प्रकार के फूल-फल निकलते। इसे भी शास्त्री जी के लिए प्रकृति की ओर से वरदान ही मानना चाहिए कि उन्हें अपने गुणों के विकास के लिए समय-

समय पर विद्वान गुरुओं और महान पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त होता गया। शास्त्री जी की प्रथम गुरु उनकी माँ हैं। सत्य निष्ठा आचार-विचार, सादगी और गीता के कर्मवाद में विश्वास की प्रेरणा उन्हें अपनी माँ से ही प्राप्त हुई है। परिस्थितियों से जूझने और संकटों से न हारने का भाव भी उन्होंने उन्हीं से ग्रहण किया है। उनकी ईश्वर भक्ति, व्रत और साधना ही शास्त्री जी के हृदय में सुष्ठता के रूप में प्रगट हुई है। स्वर्गीय पंडित निष्कामेश्वर मिश्र शास्त्री जी के द्वितीय गुरु हैं, जिन्होंने अपने सद्गुणों के सांचे में शास्त्री जी के जीवन को ढाला था। वे एक आदर्श अध्यापक थे। देश प्रेमी थे, त्यागी थे, और चरित्रनिष्ठ थे। वे अपने विद्यार्थियों को प्रायः देश प्रेम साहस और त्याग की कथाएं सुनाया करते थे। उन विद्यार्थियों में शास्त्री जी भी थे, और उनपर पंडित निष्कामेश्वर मिश्र की अधिक कृपा भी थी। देश प्रेम, त्याग और कष्ट-सहिष्णुता की भावना का विकास उन्हीं के प्रयत्नों से शास्त्री जी में हो सका है। दर्शन और अध्यात्म की प्रेरणा भी शास्त्री जी को उन्हीं से प्राप्त हुई है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के साहित्य ने भी शास्त्री जी के लिए गुरु का ही काम किया है। पंडि
निष्कामेश्वर मिश्र जी ने शास्त्री जी के हृदय में अध्यात्
और दर्शन के जो अंकुर लगाए थे, उनका विकास स्वा
विवेकानन्द के साहित्य के ही द्वारा हुआ। स्वर्गीय ग

भगवानदास के सम्पर्क ने उसे पल्लवित और पुष्पित किया। काशी विद्यापीठ में शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होंने डा० भगवानदास से बहुत कुछ ग्रहण किया—दर्शन का ज्ञान, चरित्र के प्रति दृढ़ता, सादगी और भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा आदि। डा० सम्पूर्णानन्द और स्वर्गीय नरेन्द्रदेव आचार्य का सम्पर्क भी उन्हें विद्यापीठ में हुआ। समाजवाद' की प्रेरणा, और समाज में 'समान अधिकार' का भाव उन्होंने इन्हीं नेताओं से ग्रहण किया है।

प्रयाग के क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर शास्त्री जी को स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का सहयोग प्राप्त हुआ। ईमानदारी, सचाई के लिए संघर्ष सादगी और भारतीय संस्कृति के लिए निष्ठा तथा हिन्दी प्रेम उन्हें टण्डन जी से ही प्राप्त हुआ है। गांधी जी के सम्पर्क में रहने का यद्यपि शास्त्री जी को अवसर प्राप्त नहीं हो सका है, पर गांधी जी के जीवन और उनके सिद्धान्तों ने उनके लिए अनन्य गुरु का काम किया है। गांधी साहित्य में शास्त्री जी की अगाध निष्ठा है। गांधी जी के सिद्धान्तों और आदर्शों के सांचे में उन्होंने अपने को ढालने का प्रयत्न किया है। वे अपने एक-एक कार्य को गांधी जी के सिद्धांतों को ही सामने रखकर पूर्ण करते हैं। सत्य, अहिंसा संयम, देश प्रेम, कर्तव्य के लिए दृढ़ता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, और आस्तिकता की प्रेरणा उन्हें गांधी जी से प्राप्त हुई है।

अपने जीवन काल के मध्य से ही शास्त्री जी को नेहरू

जी के सम्पर्क में रह रहे हैं। अपने पिछले गुरुओं में, माँ को छोड़कर उन्हें सबसे अधिक श्री नेहरू जी के ही सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन्होंने श्री नेहरू जी के साथ कांग्रेस के कार्यों म ही भाग नहीं लिया वरन् उनके साथ दौरे किये सभा-गोष्ठियों में विचार विमर्श किया एक साथ बैठकर मन्त्रणाएँ की और कभी-कभी निवास' तथा खाने-पीने में भी भाग लिया। इस प्रकार उन्हें श्री नेहरू जी के गुणों और उनकी विशिष्टताओं को देखने जानने समझने और हृदयगम करने का अधिक अवसर प्राप्त हुआ। विरोधी परिस्थितियों से जूझने भावात्मक एकता, अल्प-संख्यकों की सुरक्षा, महान् राष्ट्रीय दृष्टिकोण और जाति-पाँति तथा धर्म विहीन सर्वोपयोगी समाजवादी शासन की प्रेरणा उन्हें श्री नेहरू जी से ही प्राप्त हुई है।

इस प्रकार शास्त्री जी के व्यक्तित्व म गांधी और श्री नेहरू दोनों के ही गुणों और उनकी विशिष्टताओं का मिश्रण है। जहाँ एक ओर उनमें गांधी जी के सत्य अहिंसा ईमान-दारी और आस्तिकता के तत्व हैं वहाँ दूसरी ओर उनमें श्री नेहरू जी का जाति-पाँति तथा धर्म-विहीन समाजवादी दृष्टिकोण भी मौजूद है। एक ओर जहाँ उनमें भारतीय संस्कृति और दर्शन के लिए आस्था है, वहाँ दूसरी ओर मानव-संस्कृति के लिए अनुराग भी है। एक ओर जहाँ उनमें अपने कर्तव्य पालन के लिए दृढ़ता और शान्ति क लिए निष्ठा है। वहीं

दूसरी ओर उनमें क्रान्ति की चिनगारियाँ भी हैं। इस प्र
उन्होंने अपने व्यक्तित्व के निर्माण में, गांधी जी और रूसो ने
के सिद्धान्तों से तत्त्व ग्रहण करके, उसे दोनों महान् पुरुषों
विशिष्टताओं का केन्द्र बनाने का भरसक प्रयत्न किया है।



स्वर्गीय श्री द्वारका प्रसाद जी
(शास्त्री जी के पिता)

पूर्वज-परिवार

शास्त्री जी उत्तर प्रदेश, वाराणसी जिलांतर्गत रामनगर के निवासी हैं। रामनगर काशी नरेश का निवास स्थान है, जो काशी के पास ही गंगा के उस पार, गंगा-तट पर स्थित है। शास्त्री जी के पूर्वज रामनगर के ही निवासी थे। शास्त्री जी के परबाबा ब्रजमोहनप्रसाद काशी नरेश के यहाँ दीवान थे। बाबा राजेश्वरप्रसाद और बीसेश्वरप्रसाद को भी समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। शास्त्री जी के पिता का नाम श्री शारदाप्रसाद था। वे कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में अध्यापक थे। हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में उनकी अच्छी गति थी।

वे एक कुशल अध्यापक होने के साथ ही साथ धार्मिक विचार के व्यक्ति थे। शिवजी में उनकी बहुत बड़ी निष्ठा थी। वे प्रतिदिन शिवजी के मन्दिर में जाकर नियम के साथ उनकी पूजा किया करते थे। इलाहाबाद में वे प्रतिदिन गंगा-स्नान भी किया करते थे। वे प्रतिवर्ष माघ के महीने में कल्पवास भी करते थे। कभी-कभी वे झूसी में भी रहते थे। धार्मिक होने के साथ ही साथ वे बड़े परोपकारी भी थे। साधु-सन्तों की सेवा और गरीबों की सहायता में उनकी बड़ी रुचि थी।

कई वर्षों तक अध्यापन कार्य करने के पश्चात् उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया था और फिर तहसीलदार के पद पर उनकी नियुक्ति हुई थी। पर दुःख है कि केवल २८ वर्ष की अल्पावस्था में ही उनका स्वर्गवास हो गया। जिस समय उनका स्वर्गवास हुआ शास्त्री जी की अवस्था उस समय केवल डेढ़ वर्ष की थी।

शास्त्री जी की माता का नाम श्रीमती रामदुलारी है। इस समय उनकी अवस्था ८२ वर्ष के लगभग है। उनका पीहर, मिर्जापुर के गणेशगंज में है। उनके पिता का नाम हजारीलाल था। हजारीलाल चार भाई थे। एक बहन भी थी, जिसका नाम गंगादेवी था। हजारीलाल मुगलसराय में रेलवे स्कूल में अध्यापक थे। शास्त्री जी का जन्म मुगलसराय में इन्हीं के घर में हुआ था।

शास्त्री जी की माता विशुद्ध धार्मिक विचार की हैं।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही ये सौभाग्य सुख से वंचित हो गई। तब से लेकर आज तक ये तपस्विनी की भाँति ही अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। उन्होंने शास्त्री जी के पालन पोषण, और उनकी उन्नति में बड़े-बड़े संकटों और स्थितियों से संघर्ष किया है। उन संकटों और स्थितियों में 'राम' ही उनके एकमात्र आधार थे। 'राम' में उनकी अपार निष्ठा है। वे रात दिन राम की उपासना में संलग्न रहती हैं। साधु संतों की सेवा गरीबों की सहायता व्रत और गंगा स्नान ही उनका मुख्य कार्य है।

कदाचित् ही ऐसा कोई व्रत हो जिसे वे न करती हों। वे बयासी वर्ष की अवस्था में भी अपना भोजन अपने हाथ से ही बनाती हैं। वे किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ का बना हुआ भोजन ग्रहण नहीं करतीं। खान-पान में पवित्रता और एकांतता का वे अधिक महत्त्व देती हैं। वे खान-पान और भोजन के संबंध में आज के लोगों को पथभ्रष्ट मानती हैं। उनका कथन है कि खान-पान और भोजन के सम्बन्ध में स्वच्छन्दता ही के कारण आज के समाज में नाना प्रकार के रोगों का आतंक है।

खान-पान और भोजन में जहाँ वे एकान्तता रखती हैं वहाँ वे सभी प्राणियों-मनुष्यों की उन्नति और कल्याण चाहती हैं। परिचित-अपरिचित चाहे कोई भी व्यक्ति उनके पास पहुँचकर जब उन्हें अपनी दुःख की कहानी सुनाता

तो वे बिना किसी सोच-विचार के उसकी सहायता करने के लिए उद्यत हो जाती हैं। कभी-कभी वे बड़े-बड़े पेचदार मामलों में फँसे हुए लोगों के आँसुओं पर भी द्रवित हो जाती हैं, और शास्त्री जी से उनकी सहायता करने के लिए कहती हैं। कभी कभी शास्त्री जी को उनकी इस उदारता से बड़ी परेशानी होती है, और उन्हें खीझकर कहना पड़ता है—"अम्माँ मैं तो तुम्हारी उदारता से परेशान हो गया।" पर उनका मृदु हृदय कभी किसी का दुख सुनते हुए नहीं थकता। किसी का दुख दूर करने के पश्चात् उन्हें बड़ा संतोष और आनन्द होता है। वे यज्ञों, अनुष्ठानों और व्रत-उपवास से भी परोपकार को अधिक महत्त्व देती हैं। उनके परोपकार की एक कहानी सदा मेरे प्राणों में अमृत घोलती रहती है। मैं प्रायः उस कहानी को सोचता हूँ और मन ही मन कामना भी करता हूँ, कि काश समाज में इसी प्रकार सभी लोग परोपकार को महत्त्व देते !

माघ का महीना था। प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर माघ के मेले की धूम थी। शास्त्री जी की माता भी त्रिवेणी की रेती में एक झोपड़ी में रहकर कल्पवास कर रही थीं। मुझे यह बात पहले ही से ज्ञात थी। अतः मैं एक दिन अपनी धर्मपत्नी के साथ, उनके दर्शनार्थ, पता लगाकर उनकी कुटिया पर जा पहुँचा। पर वे वहाँ नहीं थीं। मुझे पता चला कि वे पास ही एक-दूसरी कुटिया में एक लड़की का तिलक चढ़ाने गई हैं। मुझे

आश्चर्य हुआ, और साथ ही उत्कण्ठा भी। मैं सोचने लगा, 'किसका तिलक कौन-सी लड़की।" मैं पता लगाकर उस कुटिया पर जा पहुँचा। देखा तो, सचमुच वहाँ तिलक का कृत्य पूरा किया जा रहा था। उन्होंने ही मुझे देखते ही आदर से बिठाया फिर तो उन्होंने मुझे उस तिलक का पूरा हाल बताया, कि यह किस लड़की का तिलक है और उसकी माँ किस भाँति गरीबी के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रही है। तिलक समारोह के पश्चात् जिस प्रकार उस लड़की का उन्होंने वहाँ विवाह किया—जिस प्रकार बारात आई जिस प्रकार उन्होंने बारात का आदर-सत्कार किया और जिस प्रकार उन्होंने उस कन्या की विदाई की उसे देखकर मैं अवाक् हो गया। मैं अब तक परोपकारियों की अनेक कहानियाँ सुना चुका हूँ, पर यह पहली ही वास्तविक कहानी थी, जिसमें मैंने किसी को पराई कन्या के विवाह में अपनी कन्या के विवाह के समान ही रुचि लेते हुए देखा था।

शास्त्री जी की माता जी सचमुच एक तपस्विनी हैं। जिस प्रकार एक तपस्विनी संयम और आचार-विचार की आग में अपने शरीर को तपाते हुई नहीं थकती, वही हाल उनका भी है। भयानक से भयानक शीत के दिनों में भी वे दिन में दो बार स्नान करती हैं। कार्तिक के महीने में वे, दिल्ली में रहने पर, यमुना जी के किनारे कुटिया लगाकर रहती हैं। उनकी कुटिया के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वह सचमुच

कुटिया होती है। माघ का महीना प्रारम्भ होते ही वे प्रयाग पहुँच जाती हैं और गंगा की रेती में महीने भर कल्पवास करती हैं। वहाँ भी उनकी कुटिया दर्शनीय होती है। आश्चर्य की बात ही है कि उसी माघ मेले में इलाहाबाद जिले के अधिकारियों के कुटुम्बियों की कुटियां बड़े ठाठ-बाट की होती हैं, इतना ही नहीं उनके लिए अधिक स्थान घेरा जाता है पर देश के मन्त्री और प्रधान मन्त्री शास्त्री जी की माता केवल एक छोटी सी कुटिया में कल्पवास के दिन काट लेती हैं। वे कभी अधिकारियों पर यह भाव नहीं जताती कि वे शास्त्री जी की माँ हैं इसलिए उन्हें सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। किसी के कुछ कहने पर वे यह कहकर उसकी जुबान बन्द कर देती हैं कि गंगा की रेती में एक न एक लोग आकाश के नीचे ही अपना दिन काट रहे हैं। क्या वे मनुष्य नहीं हैं?

विवाह और गृहस्थ जीवन

विवाह

शास्त्री जी का विवाह मिर्जापुर के बेलगंज नामक मुहल्ले में हुआ। उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती ललितादेवी है, उनके पिता का नाम श्री गणेशप्रसाद था। शास्त्री जी की बारात रामनगर से मिर्जापुर आई थी। दूल्हे के रूप में शास्त्री जी ने सिर पर मौर और शरीर पर चूड़ीदार पायजामा तथा शेरवानी धारण की थी।

विवाह के पश्चात् शास्त्री जी की धर्मपत्नी रामनगर गई। कुछ दिनों तक रामनगर रहकर वे शास्त्री जी के साथ

इलाहाबाद चली गई और फिर वे रामनगर गई। रामनगर में ही ज्येष्ठ कन्या सुश्री कुसुम का जन्म हुआ था। शेष सभी बच्चों, श्री हरिकृष्ण, सुश्री सुमन श्री रामकृष्ण श्री मोहनकृष्ण और श्री गोपालकृष्ण की जन्मभूमि प्रयाग है। उसके पश्चात् शास्त्री जी का यह छोटा परिवार इलाहाबाद चला गया और स्थायी रूप से इलाहाबाद रहने लगा। शास्त्री जी की धर्मपत्नी श्रीमती ललितादेवी ऊँचे विचार की सहृदय महिला हैं। यद्यपि उन्हें हाई स्कूल और कालेज में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला है पर उनके हृदय में सभी बातों को समझने और ग्रहण करने की शक्ति है। वे ईश्वर भक्ति में सुन्दर पद रचना करती हैं। उनकी पद रचना में स्पष्टतः उनके हृदय की सुष्टता और भावमयता होती है। गार्हस्थ्य जीवन के संचालन में वे अधिक निपुण हैं। उनके ऊपर सब कुछ छोड़कर शास्त्री जी निश्चिन्त रहते हैं। वे एक योग्य और कुशल भारतीय महिला की भाँति ही घर की व्यवस्था और शान्ति से सुन्दर बनाये रहती हैं। आधुनिक राजनीति का भी उन्हें ज्ञान है। वे आधुनिक राजनीति की गति-विधि से अपने को परिचित रखती हैं।

श्रीमती ललितादेवी गार्हस्थ्य जीवन में कुशल होने के साथ ही साथ देशभक्त भी हैं। वे खद्दर के ही वस्त्रों का उपयोग करती हैं। शास्त्री जी के साथ उनके चुनाव क्षेत्र में भी जाती हैं। जबसे शास्त्री जी का स्वास्थ्य खराब हुआ है वे छाया की भाँति ही उनके साथ रहती हैं। उन्होंने देश के लिए, देश



की स्वाधीनता के लिए बड़े-बड़े कष्टों का सामना किया है। उनका इलाहाबाद का जीवन बड़ा ही तप और साधना का जीवन रहा है। घर में थे वृद्ध माता और छोटे-छोटे बच्चे। शास्त्री जी सबको राम भरोसे छोड़कर देश की सेवा में रत रहते थे। जब बन्दी बनाये जाते थे तो दो-दो वर्ष तक जेलों में रहते थे। यद्यपि उन्हें 'मण्डल' की ओर से मासिक वृत्ति मिलती थी, पर वह वृत्ति इतनी नहीं थी कि जिससे घर का काम-काज मुक्तहस्त होकर चलाया जा सकता। यह तो शास्त्री जी की धर्मपत्नी और उनकी माता की ही कुशलता था कि वे उतने में ही अपना काम चला लेती थीं और किसी पर कमी प्रकट न होने देती थीं। जो लोग इस परिस्थिति में रह चुके हैं वही शास्त्री जी के परिवार की स्थिति और उनके कुटुम्बियों के आन्तरिक धैर्य का अनुमान लगा सकते हैं।

शास्त्रीजी जब जेल जाते थे तब स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन (यदि बाहर होते थे) उनके परिवार की देख रेख करते थे। टण्डन जी का शास्त्री जी पर बहुत बड़ा स्नेह था। टण्डन जी भी जब जेल में होते थे तो उनके साथी-हितैषी शास्त्री जी के कुटुम्ब की देख रेख किया करते थे। नेहरू जी से सम्पर्क होने पर उन्हें भी शास्त्री जी के कुटुम्ब की चिन्ता होती थी। एक बार जब शास्त्री जी की माँ बीमार हुई थीं, तो श्री नेहरू उन्हें देखने के लिए शास्त्री जी के घर भी गए थे, यद्यपि अभी श्री नेहरू और शास्त्री की पारस्परिक प्रीति

जन्म ही धारण कर रखी थी पर फिर भी श्री नेहरू शास्त्री जी की कमठता और उनकी कार्य-क्षमता से उन्हें और उनके परिवार को अपने स्नेह और अपनी सहानुभूति से अभिसिंचित करने लगे थे।

गृहस्थ जीवन

शास्त्री जी की धर्मपत्नी की आचार विचार धर्म और पूजापाठ में बड़ी निष्ठा है। शास्त्री जी के घर में प्रति सोमवार को 'नाम संकीर्तन' समारोह इन्हीं की देन है। नाम संकीर्तन' के लिए उन्होंने 'बाल मण्डली' का संगठन किया है। इस मण्डली में उनके घर के सभी कुटुम्बी और नौकर तथा उनके बाल-बच्चे हैं। प्रति सोमवार को सब लोग एकत्र होते हैं और बड़े प्रेम से नाम संकीर्तन करते हैं। यद्यपि शास्त्री जी की धर्मपत्नी की भगवान शंकर में बड़ी निष्ठा है पर वे राम' और 'श्रीकृष्ण' की पूजा-अर्चना में भी भाग लेती हैं। वे स्वयं भजन और कीर्तन बनाती हैं और लय से उनका गान करती हैं। उनके बनाए हुए भजनों की एक पुस्तक छप चुकी है और दूसरी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। वे प्रतिदिन लगभग बारह बजे तक मौन रहती हैं, और पूजा-पाठ तथा साधना में लगी रहती हैं।

शास्त्री जी की धर्मपत्नी के जीवन में शिवोपासना से सम्बन्धित चमत्कारिक घटनाएँ भी घट चुकी हैं। यहाँ मैं एक

ऐसी ही घटना का उल्लेख करने जा रहा हूँ। इस घटना से जहाँ उनकी शिव निष्ठा पर प्रकाश पड़ता है वहाँ उससे इस बात का भी पता चलता है कि उनपर भी शिवजी की कृपा दृष्टि है— उनके बाल्यावस्था की बात है। वे प्रायः अपनी माता के साथ स्नान के लिए जाया करती थीं और लौटते समय मन्दिर में शिवजी की मूर्ति को गंगाजल से स्नान कराया करती थीं। कुछ दिनों के पश्चात् उनके मन में अपने आप ही यह विचार उत्पन्न हुआ कि हम क्यों न शिव-मूर्ति को अपने घर ले चलें और तुलसी के पेड़ के नीचे रखकर उनकी पूजा किया करें। एक दिन उन्होंने अपने मन की बात अपनी माँ पर प्रकट की और माँ की सहमति पाकर शिव-मूर्ति को घर उठा ले गई और प्रतिदिन प्रेम से पूजा अर्चना करने लगीं।

एक बार शिवरात्रि के दिन उन्होंने ॐ नमः शिवाय मंत्र के सवालक्ष जप का अनुष्ठान किया। जाप प्रारम्भ हो गया। एक बार मंत्र जपने के पश्चात् वे चने का एक दाना निकाल कर रख दिया करती थीं। लगभग ग्यारह बजे रात तक उनका जाप चलता रहा। घर के सभी लोग निद्रा मग्न हो गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया। पर फिर भी बड़े मनोयोग के साथ उनका जाप जारी था। सहसा एक बहुत बड़ा साँप उन्हें अपने कमरे में रेंगता हुआ दिखाई पड़ा। वे अभी उसे देख ही पाई थीं कि वह वायु के समान आकर उनके सामने उपस्थित हो गया और अपना फन फैलाकर बैठ गया। वे अपने को सँभाल न सकीं—

भय से चीख उठीं ! उनकी माँ ने दौड़कर कमरे में प्रवेश किया। वे स्वयं कमरे से बाहर निकलती हुई बोलीं—"सांप, बहुत बड़ा सांप !" पर वह सांप उन्हें छोड़कर और किसी को भी दिखाई न पड़ा। वे लोगों के पूछने पर बार-बार सर्प की ओर संकेत करती थीं, पर वह सप उन्हें छोड़कर और किसी को दिखाई न पड़ा।"

उन्हीं दिनों से शास्त्री जी की धर्मपत्नी की शिव-पूजा में निष्ठा भी बढ़ गई। इतनी अधिक निष्ठा और इतना अधिक दृढ़ विश्वास उनका शिवजी में हो गया कि वे अपनी शिव पूजा की शक्ति से बड़े-बड़े संकटों को पार कर जाने की क्षमता की अनुभूति करने लगीं और इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्री जी की सभी पिछली बीमारियों में उन्होंने शिवजी की शरण ग्रहण की और उन्हीं की कृपा से उनकी नया पार भी लग गई।

शास्त्री जी के कुटुम्ब में उनके लड़के उनकी पुत्र वधू उनकी कन्याएँ और नाती-पोते भी हैं। शास्त्री जी के बड़े लड़के श्री हरेकृष्ण एक कुशल इंजीनियर हैं। शेष तीन लड़के अभी छोटी वय के हैं और शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। शास्त्री जी की कन्याएँ यद्यपि विवाहित हैं, पर वे उन्हीं के साथ रहती हैं। शास्त्री जी के कुटुम्बियों की चर्चा करते हुए उनके नौकर रामनाथ की चर्चा न करना अनुचित होगा। रामनाथ भी बचपन से ही परिवार की भाँति ही शास्त्री जी के साथ रहता है। अब तो उसके बाल-बच्चे भी हैं, और वे सब भी शास्त्री

यों कामराज ने कई दिनों तक विचार-मंथन किया। अन्त में उनकी दूरदर्शिता और उनकी अनन्य देश-सेवा-शक्ति ने उन्हें प्रेरणा दी कि वे शास्त्री जी के पक्ष में वातावरण तयार करें। पर फिर भी उन्होंने भी अपनी ओर से कुछ न कहकर निर्णय का भार संसदीय पार्टी के ही ऊपर छोड़ दिया। संसदीय पार्टी के सदस्यों ने भी कई दिनों तक विचारों का मंथन किया पर सब इस विषय में एकमत थे कि भारत का कल्याण इसीमें है कि शास्त्री जी के हाथों में ही वह पतवार दी जाए, जिसे नेहरू जी छोड़ गए हैं।

२ जून के प्रभात काल में संसदीय पार्टी की बैठक हुई और शास्त्री जी सर्वसम्मति से नेता चुने गए। सारे देश ने संसदीय पार्टी के इस निर्णय का हृदय से स्वागत किया और पार्टी के सदस्यों तथा कांग्रेस अध्यक्ष कामराज को उनकी इस सूझ-बूझ और बुद्धि चातुर्य के लिए उन्हें साधुवाद दिया। ६ जून को शास्त्री जी ने शपथ ग्रहण की और अपने मंत्रिमण्डल का गठन किया। आज वे भारत के प्रधान मंत्री हैं। स्वभावतः आज उन लोगों के मन-मानस में हर्ष की तरंगें रह रहकर उठ रही होंगी जिनके साथ शास्त्री जी ने अपना बचपन व्यतीत किया है कैशोर व्यतीत किया है और व्यतीत की हैं अपनी युवा की घड़ियाँ। उनका भी मन-मयूर आज आनन्द से नाचा पड़ता होगा जो उनके इलाहाबादी जीवन के साथी हैं—निकटवर्ती हैं। यही नहीं आज उन कोटि-कोटि गरीबों

और साधन विहीन व्यक्तियों का मन भी प्रसन्नता से नाच उठा होगा जो यह समझते हैं कि गरीबी की गोद में जन्म लेने के कारण—साधनों का अभाव होने के कारण उनके बच्चों का भविष्य अंधकारमय है। शास्त्री जी ने अपनी गौरवपूर्ण उन्नति से यह सिद्ध करके दिखा दिया कि यदि बालक में विशिष्टता है, प्रतिभा है आगे बढ़ने की लालसा है तो गरीबी उसके चरणों को नहीं बांध सकती—नहीं बांध सकती।।

लाल किले से

प्रधानमन्त्री पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् शास्त्री जी ने १५ अगस्त को लालकिले के ऊपर खड़े होकर प्रथम भाषण दिया है। उन्होंने अपने भाषण में अपनी भावी नीतियों पर प्रकाश डाला है। अतः उनका यह भाषण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके इस भाषण से उनके व्यक्तित्व और विचारों पर भी प्रकाश पड़ता है। इसी उद्देश्य से हम भी यहाँ उसके महत्त्वपूर्ण अंश 'हिन्दुस्तान' से उद्धृत कर रहे हैं— भारत सम्मान और गौरव के साथ किसी भी ढंग से बातचीत द्वारा अपने विवाद हल करने को उद्यत है किन्तु अगर कोई धमकी और तलवार के बल पर हमें झुकाना चाहेगा, तो हम अपनी सारी शक्ति से उसका मुकाबला करेंगे। चीन ने चूंकि अपने रुख में कोई परिवर्तन नहीं किया है इसलिए उसके प्रति हमारा भी रवैया कायम रहेगा।

'अभी-अभी एक डेढ़ महीने से अन्न का सवाल कठिन बन गया है खास तौर से कुछ सूबों में जो आपके पड़ोस में हैं—उत्तर प्रदेश बिहार बंगाल और उत्तर-पश्चिम की तरफ जाएँ तो महाराष्ट्र और गुजरात राज्य और राजस्थान के एक हिस्से में। लेकिन मैं आपसे कह सकता हूँ कि हमने उसका मुकाबला करने की पूरी कोशिश की है, केवल बाहर के अनाज से नहीं बल्कि अपने देश के उन सूबों से जहाँ अन्न वहाँ की जरूरत से ज्यादा पैदा होता है जैसे पंजाब उड़ीसा, आंध्र और मध्य प्रदेश से अनाज हमने जल्दी-जल्दी उत्तर प्रदेश बिहार बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात भिजवाया है। इससे वहाँ हालत सुधरी है। बीस दिन या एक महीने पहले वहाँ जो परेशानी और बेचैनी थी वह अब कम है। अगले महीने-दो महीने में हमें और यत्न करना होगा। जिसके पास जितना है उससे वह ज्यादा खर्च न करे। हम अपने खर्च को घटाएँ अन्न के खर्च को तो उससे भी घटाएँ। मैं चाहता हूँ कि हर एक शहर का रहने वाला हर एक गाँव का रहने वाला अपने पड़ोसी को देखे कि कहाँ मुसीबत है कौन तकलीफ उठा रहा है। हमें अपने खाने में कुछ कमी करके भी दूसरे को खिलाना पड़े तो उसके लिए तैयार रहने की जरूरत है। घबड़ाकर अपने अपने घरों में कुछ ज्यादा रख लें यह बात मुनासिब नहीं है और मुझे विश्वास है कि हमें जिस संकट का मुकाबला करना पड़ रहा है उसमें हम हिम्मत

बहादुरी और दूरंदेशी से काम लेंगे ।

"मैं यह समझता हूँ कि आज के जमाने में अगले दो तीन महीनों में न दावतों की जरूरत है, न डिनर की जरूरत है, न लंच की जरूरत है । अभी भी न कोई दावत मंजूर करेंगे, न कहीं जायेंगे, न कोई दावत लेंगे, और न पार्टीज होंगी । मैं जानता हूँ कि इसमें कोई बहुत बचत की बात नहीं है, फिर भी आज देश का एक मानस तैयार करना है, देश का दिमाग तैयार करना है और हमें यह दिखलाना होगा कि जो आज कमियाँ हैं उनको हम सब मिलकर दूर करने की कोशिश कर रहे हैं ।

'असली सवाल तो यह है कि हम अपने देश में ज्यादा अनाज पैदा करें । इसके लिए हमने जो कदम उठाने का इरादा किया है हम जिस तरह से किसानों के अनाज की कीमत बढ़ाना चाहते हैं, जिस तरह से किसानों पर बगैर मुसीबत पहुँचाए सरकार उनसे अनाज खरीदना चाहती है और हम जो दूसरी बातें करना चाहते हैं, मुझे विश्वास है कि उनकी बदौलत अगले वर्ष-दो वर्ष के अन्दर हम अपनी हालत ऐसी बना सकेंगे जिसमें आज जैसी स्थिति का हमें मुकाबला न करना पड़े ।

'हमें यह भी ध्यान में रखना है कि ज्यादा अनाज पैदा होगा—खाद देने से पूरी तरह पानी देने से, या किसानों को कर्जा देने से या अच्छे बीज और अच्छे जानवरों के कारण,

लेकिन असली ताकत तो दिलों में रहती है। आज करोड़ों किसान अगर यह इरादा कर लें कि हम एक आन्दोलन के रूप में खेती की पदावार को बढ़ायेंगे तो समय बदल सकता है हालत बदल सकती है। कुछ हमें गांवों जा की भावना को अपनाना होगा। जब हम आन्दोलन चलाते थे गाँव-गाँव में जाते थे। इस समय भी इस बात की जरूरत है कि हम गाँवों में जाएं खेत-खेत पर जाएं। हम अपने ऊपर यह जिम्मेदारी उठायें कि देश के अंदर गाँवों के अदर किसानों में ज्यादा से ज्यादा अनाज पदा करने का एक आन्दोलन चला देंगे। मैं चाहता हूँ कि हम सब आज इस भावना से प्रेरित हों।

' और भी दूसरे सवाल हैं। मैं किसी चीज को आप से छिपाकर और दबाकर रखना नहीं चाहता। आज कीमतें बढ़ रही हैं मूल्य बढ़े हुए हैं। जरूरी सामान भी ज्यादा कीमत पर मिलता है। कपड़ा है तेल है चीनी है, गुड़ है दियासलाई है—छोटी-मोटी ऐसी चीजें जो हमारी रोज की जिन्दगी में काम आती हैं, उनके भी दाम बढ़े हुए हैं और उसका असर किसान पर भी पड़ता है। उसपर भी हमें रोक लगानी होगी। मूल्य वृद्धि के पीछे कुछ मौलिक बातें—हमारी आर्थिक नीतियाँ हैं।

' हमने पिछले १२ साल के अन्दर तीन योजनाओं में २० हजार करोड़ रुपए खर्च किए हैं, और खर्च करने का इरादा रखते हैं। क्या हम कभी कल्पना कर सकते थे कि इस देश में

हम दस-बारह साल के अंदर इतना खर्च कर लेंगे। लेकिन जब हम रुपया लगाते हैं तो उसी के अनुसार हमें पैदा भी करना चाहिए। अगर रुपया लगाने के साथ-साथ हमारी पैदावार न बढ़े य नोट बड़ी मात्रा में फलते हैं। इससे कीमतें बढ़ती हैं। आज ऐसी हालत आ गई है जब हमें सोचना पड़ेगा कि इन कीमतों की बढ़ती पर काबू पाने के लिए हम क्या कदम उठाएं। इसमें कोई पीछे हटने की बात नहीं लेकिन मजबूत कदम उठाने की बात है। हमारा लक्ष्य एक ही है। हम वहीं पहुंचेंगे—एक नया समाज एक क्रांतिकारी समाज हमें बनाना है। लेकिन हमारा हर कदम सोचा हुआ समझा हुआ और एक मजबूती के साथ बढ़ना चाहिए। मुझे विश्वास है कि आज जो हमारी साधारण आर्थिक परिस्थिति है सरकार उसे अच्छी तरह से सोचेगी और हम एक रास्ता निकालेंगे, जिस रास्ते से हम ठीक-ठीक आगे बढ़ सकें और आज की बढ़ती हुई कीमतें हैं उनपर भी काबू पा सकें।

अपने देश में अगले कुछ सालों के अंदर मैं देखना चाहता हूं कि जरूरी सामान की कीमतें बंधी हुई हों। जो ज्यादा बड़ी खूबसूरत चीजें हैं उनपर जो जितना पैसा खर्च करना चाहे करे, और जो कीमतें रहें वह रहें। लेकिन मुझे इस बात की चिंता है कि आज गरीब आदमी, साधारण आदमी खा सके, पहन सके रह सके, और साथ ही साथ उसको ऐसी जरूरी चीजें, जिनका मैंने थोड़ा जिक्र किया, उसको मिल सकें

भौर उनकी कीमतें बँधी रह सकें। एक-एक दूकान पर कीमतों की सूची टँगी रहे भौर यह सरकारी अफ़सरों का काम होगा कि वे यह देखें कि वे कीमतें ठीक होती हैं भौर उनके अनुसार काम चलता है।

यसे अपने देश में हमें पड़ौसी देशों की पहले फिक्र करनी है भौर जितनी हम अपने देश में शांति रख सकें भौर उसकी वजह से दुनिया में शांति बनाये रख सकें वह एक बहुत ही जरूरी बात है। चीन का हमला हमारे देश पर हुआ। उसका रुख नहीं बदला है हम भी अपना रुख नहीं बदल सकते। इज्जत भौर सम्मान के साथ बातचीत करने से हमारा देश कभी पीछे नहीं हटा है। क्या गांधी जी, भौर क्या जवाहरलाल जी, हमारा यह तरीका रहा कि चाहे हमारा कोई कितना हो विरोधी या मुखालिफ क्यों न हो अगर वह बात करना चाहे तो हम शान भौर मर्यादा के साथ बात करने को तयार हैं लेकिन अगर तलवार की नोक पर या एटम बम के डर से कोई हमारे देश को झुकाना चाहे, दबाना चाहे तो यह देश दबने वाला नहीं है। हमारी करोड़ों की ताकत जनता की ताकत इतनी जबर्दस्त है कि हम किसी भी खतरे का मुकाबला कर सकते हैं।

'मुझे बड़ी खुशी है कि राष्ट्रपति अयूब ने एक बड़ी अच्छी भावना का प्रसार किया है अच्छे खयालात जाहिर किए हैं। कल ही आपने अखबारों में देखा होगा कि उन्होंने

भारत और पाकिस्तान की एकता और मेल-जोल की बात की है। मुझे उससे खुशी है और मैं उसका स्वागत करता हूँ। मैं भी चाहता हूँ और देश भी चाहता है कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में मेल रहे। आये दिन रोज झगड़े होते हैं सरहदों पर गोलियाँ चलती हैं। यह न पाकिस्तान के लिए अच्छा है और न हिन्दुस्तान के लिए। लाखों भाई अगर इधर से उधर आएँ और हम इसे रोक न सकें तो हमारे लिए यह कोई गौरव की बात नहीं है। इसलिए मेल और समझौता जैसा कि मैंने कहा आदर और सम्मान के साथ एक दूसरे की बात को समझकर हम कोई रास्ता निकालना चाहें तो उसे भी निकालना चाहिए। मुझे भरोसा है कि अगले कुछ महीनों में हम अपनी बातें कर सकेंगे और मेल-जोल की एक ऐसी भावना पैदा कर सकेंगे जिससे एक रास्ता—ठीक रास्ता निकल आए।

' हमारे पड़ोस में हमारा प्रेम बर्मा से है लंका से है नेपाल से है और अफगानिस्तान से है। ये सभी हमारे मित्र देश हैं। कुछ कठिनाइयाँ कभी-कभी आ जाती हैं। कुछ लंका में भी हैं बर्मा में भी हैं। हमें खुशी है कि सीलोन की प्रधान मंत्री ने यहाँ शास्त्रीजी के सहायक ने आना मंजूर किया है। लंका में हिन्दुस्तानियों का जो प्रश्न है मुझे भरोसा है कि उसे हल करने में हम कामयाब होंगे। हमारे विदेश मंत्री सरदार स्वर्णसिंह जी बर्मा जा रहे हैं और मैं समझता हूँ कि वहाँ आज

जो कठिनाइयाँ और दिक्कतें हैं, उनको भी हल करने में हम कामयाब होंगे।

' दुनिया में शांति का रास्ता जवाहरलाल जी ने दिख-लाया और आज भी हम दुनिया में शांति कायम रखने में अपनी सारी ताकत लगाएँगे। हमारी नीति किसी बड़ी शक्ति के साथ नहीं रहने की की है। हमारी नीति चाहे नान अलाइनमेण्ट की हो, चाहे को-एग्जिसटेंस की हो चाहे डिस आर्मामेण्ट की हो, चाहे एण्टीकालोनियलिज्म की हो या एण्टी रेशियलिज्म की हो, हम उपनिवेश नहीं चाहते। हम पुर्तगाल की कालोनीज को मिटाना चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि वे कायम रहें। हम काले और गोरे के रंग को बर्दाश्त नहीं करना चाहते, चाहे वह साउथ अफ्रीका में हो या कहीं और हो। हम नीति पर अड़े रहेंगे, जो सच है। हम सचाई का साथ देंगे।

' दुनिया में हमारी कद्र तभी होगी जब हम अपने देश में मजबूत हों, जब अपने देश में हमारी ताकत हो और जब हम अपने देश में गरीबी को मिटा सकें। हमारे अन्दर मेल और एकता जरूरी है। अगर हम साम्प्रदायिक झगड़ों में पड़े, अगर हम भाषा और जबान के आपसी झगड़ों में पड़े तो हमारी ताकत में बाधा पड़ेगी।

'' मैं नहीं कहता कि कोई विरोधी दल सरकार की आलोचना न करे, जरूर करे। सरकार की जितनी बुराई करनी चाहे एक लोकतन्त्रीय ढंग से करे। हम उसका स्वागत

हैं। लेकिन कुछ ऐसा वक्त भी आता है, कोई ऐसा सवाल
ता है जिसमें सारा देश सारा राष्ट्र और सारी पार्टियाँ
ाथ खड़ी होती हैं और मुल्क के सवालों को हल करती
ाने का सवाल कोई ऐसा सवाल नहीं है जिसको हम
की बुनियाद पर हल करने की कोशिश करें। मैं इस
को अपने तमाम साथियों पर छोड़ता हूँ कि वे इस पर
और विचार करें। लेकिन इतना आपसे निवेदन है कि
ाय एकता—देश की एकता को बनाए रखकर अपना
नया समाज बनाकर अपने समाज में शान्ति करके हमको
देश को मजबूत बनाना है और तभी हम दुनिया में
त बन सकेंगे।

"यह खाना-पीना, पहनना सब जरूरी है लेकिन देश
ा है—केवल धन-दौलत से नहीं। रुपया-पैसा होते हुए भी
पीछे रहते हैं, दुनिया की नजरों में—और अपनी नजरों
देश कैसे बनता है—देश बनता है गांधी जैसे आदमियों से,
हरलाल जैसे आदमियों से रवीन्द्रनाथ टगोर जैसे
क्तियों से। इनमें क्या बात थी? उनमें एक चरित्र था,
नतिकता थी। अगर आज हम चाहते हैं कि हमारा देश
ो बढ़े तो फिर ऐसे नौजवानों को जन्म लेना होगा जो
रत्न और अनुशासन को अपने सामने रखेंगे, तो देश का
विष्य उज्ज्वल होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

"मैं इतना ही आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ,

जो कठिनाइयाँ और दिक्कतें हैं, उनको भी हल करने में हम कामयाब होंगे।

दुनिया में शांति का रास्ता जवाहरलाल जी ने दिखलाया और आज भी हम दुनिया में शांति कायम रखने में अपनी सारी ताकत लगाएँगे। हमारी नीति किसी बड़ी शक्ति के साथ नहीं रहने की की है। हमारी नीति चाहे नान अलाइनमेण्ट की हो चाहे को-एक्जिसटेंस की हो, चाहे डिस आर्मामेण्ट की हो, चाहे एण्टीकालोनियलिज्म की हो, या एण्टी रेशियलिज्म की हो हम उपनिवेश नहीं चाहते। हम पुर्तगाल की कालोनीज को मिटाना चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि वे कायम रहें। हम काले और गोरे के रंग को बर्दाश्त नहीं करना चाहते, चाहे वह साउथ अफ्रीका में हो या कहीं और हो। हम नीति पर अड़े रहेंगे जो सच है। हम सचाई का साथ देंगे।

"दुनिया में हमारी कद्र तभी होगी जब हम अपने देश में मजबूत हों, जब अपने देश में हमारी ताकत हो और जब हम अपने देश में गरीबी को मिटा सकें। हमारे अन्दर मेल और एकता जरूरी है। अगर हम साम्प्रदायिक झगड़ों में पड़े, अगर हम भाषा और जबान के आपसी झगड़ों में पड़े तो हमारी ताकत में बाधा पड़ेगी।

"मैं नहीं कहता कि कोई विरोधी दल सरकार की आलोचना न करे जरूर करे। सरकार की जितनी बुराई करनी चाहे एक लोकतन्त्रीय ढंग से करे। हम उसका स्वागत

कि हम दिखाने के लिए कोई काम नहीं करेंगे। हमें अपनी कामयाबी और सफलता का पूरा भरोसा है। मैं इतमीनान से कहता हूँ कि हम देश के काम को आगे बढ़ाएँगे तेजी से बढ़ाएँगे मजबूती से चलाएँगे और देश के प्रश्नों को हल कर भारत को दुनिया में एक ऊँचा से ऊँचा स्थान देंगे।"

शास्त्री जी का यह भाषण उन्हीं के अनुरूप है। उन्हीं के शब्दों में देश के जन-जन को भरोसा है कि वे देश के काम को आगे बढ़ाएँगे—दृढ़ता के साथ आगे बढ़ाएँगे।

उनके साथ साधना की शक्ति है। हम तो उसी में विश्वास करते हैं और उसी के बल पर कहते हैं कि वे अवश्य देश के काम को आगे बढ़ाएँगे—नेहरू के स्वप्न को पूरा करेंगे।

